

॥ ॐ ॥

मुक्तिबोध

त्रैमासिक अंक 01 मार्च 2026



अप्प दीपो भवः

निःशुल्क डिजीटल आध्यात्मिक पत्रिका

- मैं कौन हूँ? आत्मज्ञान
- शिव तत्त्व: शिव कौन है?
- आध्यात्मिक प्रगति के चिह्न
- धर्म और अध्यात्म : आचरण से जागरण

सत्यवती सत्यकाम



स्कैन करें: विजुअल स्टोरी

gyanmarg.guru

गुरु तत्त्व | गुरुक्षेत्र | गुरु मंडल



मुक्तिबोध

अप्प दीपो भवः



मुक्तिबोध

अप्प दीपो भवः

निःशुल्क डिजिटल आध्यात्मिक पत्रिका (मूलतः ज्ञानमार्ग पर आधारित)

संपादकीय मंडल

प्रधान संपादक

डॉ. अजय शुक्ल
विद्या वाचस्पति

संपादक

आदित्य मिश्रा एवं
प्रतीप जांगड़ा

तकनीकी एवं सृजनात्मकः

राम, अनागामी, हिमांशु,
मुक्ति

पर्यवेक्षक

हिमांशु नौटियाल

प्रूफरीडिंग

विदुषी

प्रबंध संपादक

आदिसत्व

संपर्क

वेबसाइट:

gyanmarg.guru

ईमेल:

muktibodh@nirvandham.in

पता:

LIG 2/13, प्रीतम नगर कॉलोनी, सुलेम
सराय, प्रयागराज उत्तर प्रदेश – 211011

संपर्क:

+91 7982 632 576



अस्वीकरण

यह एक निःशुल्क डिजिटल आध्यात्मिक पत्रिका है, जिसका प्रकाशन केवल डिजिटल माध्यम से किया जाता है। संपादक मंडल अवैतनिक है तथा निःस्वार्थ भाव से सेवारत है। पत्रिका, पठन सामग्री एवं रचनाकारों से संबंधित जानकारी के लिए संपर्क किया जा सकता है। रचना प्रेषण हेतु उपरोक्त नंबर पर व्हाट्सएप एवं टेलीग्राम उपलब्ध है। इस पत्रिका के निर्माण, संपादन, लेआउट एवं दृश्य प्रस्तुति में आधुनिक AI तकनीक का सहयोग लिया गया है तथा प्रकाशित समस्त सामग्री संबंधित रचनाकारों के निजी अनुभव एवं विचार हैं।

यह पत्रिका gyanmarg.guru के तत्त्वाधान में प्रकाशित है।

© २०२६ gyanmarg.guru | संकलित एवं डिजिटल प्रकाशित
(समस्त रचनाओं का सर्वाधिकार संबंधित गुरुजनों, आश्रमों, संस्थानों एवं साधकों-रचनाकारों के पास सुरक्षित है)

विषय सूची

संपादकीय	04
निर्वाणषटकम्	05
प्रेरणास्त्रोत	06
काव्य — बीज	07
काव्य — कृपा का बादल	07
काव्य — शत शत नमन	08
काव्य — समर्पण	08
काव्य — अंतर्बोध	09
अमरगाथा: सत्यकाम और सत्यवती	10
आध्यात्मिक प्रगति के चिन्ह	13
मैं कौन हूँ? आत्मज्ञान	16
साक्षीभाव — होना, न कि करना	18
लघु दृष्टांत	19
द्वैत के कोलाहल में अद्वैत का मौन	20
बोध कथा — घड़े का आकाश	21
भवसागर	22
शिव तत्त्व: शिव कौन है?	23
दृष्टांत	25
मैं क्या है?	26
धर्म और अध्यात्म: आचरण से जागरण	27
सहजबोध: निःस्वार्थ सेवा	30
महर्षि मुक्त	31
अवधूत दत्तात्रेय के 24 गुरु	33
आध्यात्मिक व्यंग्य — “मैं वायरस”	35
बोध संवाद	37
लघु बोध कथा — खामोश दीवार का राज	38
लघु बोध कथा — मानसिक भार से मुक्ति	39
लघु बोध कथा — ठहर जा	39
मौन संवाद	40
चित्र कथा — खोजी और सत्य	41
सत्संग के कुछ क्षण	42

संपादकीय

॥ अण्ण दीपो भव ॥

आध्यात्मिक यात्रा का अर्थ किसी नए गंतव्य को पाना नहीं, बल्कि उस बोध का प्रकट होना है जो सदा से भीतर विद्यमान है, पर अज्ञान की परतों में ढका हुआ प्रतीत होता है। विक्रम संवत् २०८२ की चैत्र शुक्ल महानवमी और श्री रामनवमी के पावन संयोग पर 'मुक्ति बोध' का यह प्रथम अंक उसी अंतर्दृष्टि की ओर एक शांत संकेत है।

मनुष्य का जीवन प्रायः खोज में बीतता है—कुछ पाने की, कुछ बनने की, कुछ जान लेने की। परंतु इस निरंतर खोज में एक सूक्ष्म तथ्य अक्सर अनदेखा रह जाता है कि जो खोजा जा रहा है, वह कहीं बाहर नहीं, बल्कि उसी खोजने वाले के मूल में स्थित है। यही विस्मरण ही बंधन का कारण प्रतीत होता है, और इसी का स्मरण ही सत्य की ओर लौटने का द्वार खोलता है।

इस अंक का प्रत्येक पृष्ठ सत्य की खोज में लगे साधकों के लिए एक दिशा-सूत्र है। परम पूज्य श्री तरुण प्रधान जी का लेख 'आध्यात्मिक प्रगति के चिह्न' साधना को परखने की एक सहज कसौटी प्रदान करता है—जहाँ बाहरी उपलब्धियों के स्थान पर आंतरिक स्पष्टता का महत्व प्रकट होता है। वहीं, माँ शून्य का लेख 'मैं कौन हूँ? आत्मज्ञान' उस मूल प्रश्न की ओर संकेत करता है, जहाँ पहुँचकर उत्तर गौण हो जाते हैं और केवल साक्षी का बोध शेष रह जाता है।

यहाँ प्रस्तुत प्रत्येक लेख, कथा, कविता और संवाद किसी निष्कर्ष को स्थापित करने का प्रयास नहीं करते, बल्कि देखने की एक दिशा खोलते हैं। शब्द माध्यम हैं, लक्ष्य नहीं; संकेत हैं, सत्य नहीं। सत्य तो वही है जो स्वयं में अनुभव होता है—जहाँ दृष्टि अनुभव से हटकर अनुभव के जानने वाले पर ठहरती है।

महर्षि मुक्त के पाँच महासूत्र उस दीपक की भाँति हैं, जो 'मैं' की जटिलता को सहजता में स्पष्ट करते हुए 'स्वयं' के प्रकाश का आभास कराते हैं। उनके जीवन की झलक भी इसी दिशा में एक मौन संकेत है—जहाँ साधना किसी उपलब्धि का मार्ग नहीं, बल्कि अपने स्वभाव की पहचान है। वहाँ प्रयास नहीं, केवल स्पष्टता है; और स्पष्टता के साथ ही वह परिवर्तन स्वाभाविक रूप से प्रकट होता है।

जीवन के सामान्य अनुभव—सुख-दुःख, सफलता-असफलता, मान-अपमान—अक्सर व्यक्ति को उलझाते

प्रतीत होते हैं। परंतु जब वही अनुभव साक्षीभाव में देखे जाते हैं, तो वे बंधन का कारण नहीं रहते, बल्कि समझ के माध्यम बनते हैं। इसी दृष्टि से प्रस्तुत कथाएँ और दृष्टांत यह दिखाते हैं कि साधना जीवन से अलग कोई प्रक्रिया नहीं, बल्कि जीवन को देखने की स्पष्टता है।

जब दृष्टि सूक्ष्म होती है, तब यह स्पष्ट होने लगता है कि जो कुछ भी बदल रहा है—विचार, भाव, अनुभव—वह "मैं" नहीं हो सकता। जो इन सबको जान रहा है, वही साक्षी है, वही दृष्टा है। उसी में स्थिरता है, उसी में शांति है। यह कोई अवस्था नहीं जिसे प्राप्त करना हो, बल्कि एक ऐसी स्पष्टता है जो पहले से ही उपस्थित है—केवल पहचान भर का अंतर है।

इस रामनवमी पर केवल पूजा तक सीमित रह जाना आवश्यक नहीं। दृष्टि जब स्वयं की ओर ठहरती है, तब 'आत्माराम' कोई धारणा नहीं रह जाता—वह वही सत्य स्वरूप है जो सदा से है, शाश्वत है, अद्वैत है। उसे पाना नहीं होता, केवल पहचानना होता है।

यह एक साधारण-सा प्रयास है—सत्य की ओर संकेत भर। यह पत्रिका निःशुल्क है; जैसे ज्ञान अपने स्वभाव में मुक्त होता है, वैसे ही यह भी सहज रूप से सभी के लिए उपलब्ध है।

यह उसी परंपरा का विस्तार है, जिसमें gyanmarg.guru के माध्यम से ज्ञान पहले से ही एक ऑनलाइन गुरुकुल के रूप में उपलब्ध है—जहाँ मार्गदर्शन के लिए गुरुदेव श्री तरुण प्रधान जी की दैहिक उपस्थिति है, और उनके ही सान्निध्य में साधक अपने सत्य स्वरूप में स्थिर होने की दिशा में बढ़ते हैं।

अंततः, यह यात्रा किसी दूरी को तय करने की नहीं, बल्कि उसी स्थान पर ठहरने की है जहाँ से सब प्रारंभ हुआ था। जब यह ठहराव स्पष्ट होता है, तब प्रश्न समाप्त नहीं होते—वे अप्रासंगिक हो जाते हैं।

यदि कुछ भी स्पष्ट होता है, तो वह पहले से ही था।

यदि कुछ भी मिटता है, तो वह केवल आवरण था।



निर्वाण षट्कम् जगद्गुरु श्री आदि शंकराचार्य

॥ ॐ नमः भगवते शंङ्कराचार्याय ॥

॥ १ ॥

मनो बुद्धयहंकार चित्तानि नाहम्
न च श्रोत्र जिह्वे न च घ्राण नेत्रे।
न च व्योम भूमिर् न तेजो न वायुः
चिदानन्द रूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्॥

॥ ४ ॥

न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखम्
न मन्त्रो न तीर्थं न वेदाः न यज्ञाः।
अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता
चिदानन्द रूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्॥

॥ २ ॥

न च प्राण संज्ञो न वै पञ्चवायुः
न वा सप्तधातुर्न वा पञ्चकोशः।
न वाक्पाणिपादौ न चोपस्थपायू
चिदानन्द रूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्॥

॥ ५ ॥

न मृत्युर न शंका न मे जातिभेदः
पिता नैव मे नैव माता न जन्म।
न बन्धुर न मित्रं गुरुर्नैव शिष्यः
चिदानन्द रूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्॥

॥ ३ ॥

न मे द्वेषरागौ न मे लोभमोहौ
मदो नैव मे नैव मात्सर्यभावः।
न धर्मो न चार्थो न कामो न मोक्षः
चिदानन्द रूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्॥

॥ ६ ॥

अहं निर्विकल्पो निराकार रूपो
विभुत्वाच्च सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणाम्।
न चासंगतं नैव मुक्तिर् न मेयः
चिदानन्द रूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्॥

॥ चिदानन्द रूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम् ॥

प्रेरणास्रोत



सतगुरु श्री तरुण प्रधान जी

॥ गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः
गुरुर्साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः॥

इस पत्रिका की संकल्पना गुरु माँ शून्य की थी, जो कैवल्यश्रम के प्रांगण में प्रस्फुटित हुई। ज्ञानरूपी यह पौध हमें उन्हीं से प्राप्त हुआ, जिसका सतत पोषण गुरुक्षेत्र ने किया है। उसी ज्ञान का पुष्प—‘मुक्तिबोध’ पत्रिका—अब आपके समक्ष प्रस्तुत है। यह प्रस्तुतिकरण गुरुक्षेत्र द्वारा प्रदत्त दायित्व के निर्वहन का एक लघु प्रयास है।



यह संकलन सतगुरु श्री तरुण प्रधान जी की असीम करुणा और उनके उन दिव्य संकेतों का प्रकटीकरण है, जिन्होंने हजारों जिज्ञासुओं के लिए सत्य का मार्ग प्रशस्त किया है।

गुरुदेव ने प्राचीन ऋषियों के उस ज्ञान को, जिसे उन्होंने स्वयं जिया है, आधुनिक समय के अनुरूप ढालकर अत्यंत सरल और सुग्राह्य रूप में साझा किया है। ‘बोधिवार्ता’ (हिंदी) और ‘Path of Knowledge’ (अंग्रेज़ी) के माध्यम से हजारों वीडियो, लेख और सत्संगों का जो विशाल भंडार उन्होंने उपलब्ध कराया है, वह पूर्णतः निःशुल्क और सर्वसुलभ है। जाति, पांति, लिंग तथा सामाजिक स्थिति के बंधनों से परे, उनका ज्ञानदीक्षा-सत्संग प्रवेश के लिए केवल एक ही योग्यता अपेक्षित करता है—साधक में ज्ञान के प्रति जिज्ञासा।

gyanmarg.guru, जो एक निःशुल्क ऑनलाइन गुरुकुल है, अदृश्य गुरुक्षेत्र के अलौकिक ज्ञान का सजीव स्वरूप है। हमारा उद्देश्य इसी ज्ञान को सरल, सहज और निःशुल्क रूप में सभी जिज्ञासुओं तक सुलभ कराना है। इस पत्रिका में गुरु की उपस्थिति में साझा किया गया वही मौलिक और प्रमाणित ज्ञान संकलित है, जो साधक को स्वयं के प्रकाश तक ले जाने में समर्थ है।

॥ काल-गणना ॥

ब्रह्म द्वितीय परार्ध, श्रीश्वेतवाराह कल्पे, वैवस्त मनवंतरे,
अष्टाविंशतितमे कलियुगे, कलिप्रथमचरणे, भरतखण्डे।
सृष्टि संवतः १,९७,२९,४९,१२७ • विक्रम संवतः २०८२ (नल संवत्सर)
तिथिः चैत्र शुक्ल महानवमी एवं श्री रामनवमी, उत्तरायण, वसंत ऋतु
२७ मार्च २०२६, शुक्रवार

॥ सादर समर्पित ॥

बोध-काव्य

बीज

आलौकिका

धरती को क्या बीज से नाता,
जैसा बीज को बोया जाता ।

उसी स्वभाव, गुण, धर्म को लेकर,
कड़वा, मीठा फल बन जाता ।

कुदरत का कानून है धरती कर्म तुम्हारे बीच,
एक बीज के फल हजारों हैं, हजार फलों के लाखों बीज।

कहें गुरुवर नहीं जगत में स्वर्ग -नरक को देने वाला, नरक- स्वर्ग
हम स्वयं रचते पल-पल जैसा बीज को डाला ।

वह आहार ,व्यवहार, विचार से हर पल बीज जो बोये,
पल- पल फल बनता गया अचानक कुछ ना होय ।

कहें संत जागे रहो सचेत रहो हर पल,
इस पल बोया बीज ही फल लायेगा कल ॥



कृपा का बादल

अनागामी

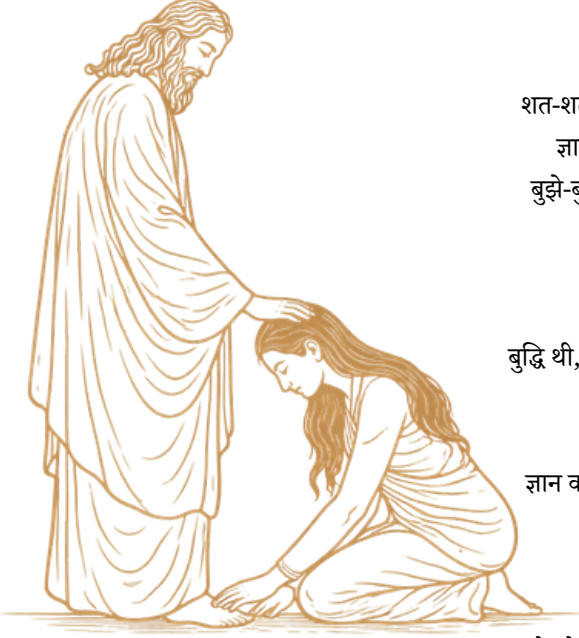
कृपा का बादल बरसा ज्योंहि,
ज्ञान बीज ने ली अंगड़ाई।
धरती का सीना फाड़ के देखो,
नव पल्लव निकल आई।

शीघ्र लगेंगे पत्ते आनंद के,
खूब खायेगी झोंके तरुणाई।
खिलेंगे फूल परम प्रेम के,
सुगंधित कलियां खिल आई।
कृपा का बादल बरसा ज्योंहि,
ज्ञान बीज ने ली अंगड़ाई।

शांत शीतलता के छांव में
छन- छन बहेगी हवा मधुराई।
पूर्णता के मौन में चीर -स्थित
हुई वट-वृक्ष की गहराई।
कृपा का बादल बरसा ज्योंहि,
ज्ञान बीज ने ली अंगड़ाई।

अब उसकी गोदी में पनपेंगे,
नए ज्ञान-बीजों की मदुराई।
कृपा का बादल बरसा ज्योंहि।

बोध-काव्य



शत शत नमन करुं

शत-शत नमन करुं मैं उसको, जो गुरु क्षेत्र से आया है,
ज्ञान की गंगा लाया है — शत-शत नमन करुं।
बुझे-बुझे से मन थे सबके, बुझे-बुझे से मन थे सबके,
सबका हृदय-कमल खिलाया है —
शत-शत नमन करुं।

बुद्धि थी, पर अज्ञान भरा था, बुद्धि थी, पर अज्ञान भरा था,
अज्ञान हटा कर उसको शुद्ध बनाया है —
शत-शत नमन करुं मैं।
ज्ञान का प्रकाश फैला कर, ज्ञान की मशाल जला कर,
सबको गहरी नींद से जगाया है —
शत-शत नमन करुं।

क्या और कैसे कुछ अर्पित करुं, क्या और कैसे कुछ अर्पित करुं,
हृदय का कमल जो खिलाया आपने, उससे यह हार बनाया है —
शत-शत नमन करुं मैं उसको, जो गुरु क्षेत्र से आया है,
ज्ञान की गंगा लाया है।

समर्पण

दीप्तज्योति

अनजानी सी राह पकड़कर, अज्ञान मिटाने आए हैं।
प्रेम कृपा बरसाए रखना, हम शरण आपकी आए हैं।

दुनिया के रिश्ते-नाते झूठे, सच का दृश्य दिखाए हो।
पर गुरुजी! बिना आपके, ना एक कदम चल पाए हैं।

मन रटता है गुरु-गुरु, अब कुछ समझ नहीं आता है।
हाथ पकड़ लो गुरुजी मेरा, मन बहुत घबराया है।

छोड़ दिया व्रत, नेम, धर्म सब, पूजा-अर्चना ना आती है।
सिर्फ ज्ञान की छड़ी घुमा दो, वही काम कर जाती है।

समय आ चुका है गुरुजी अब तो, तन-मन-धन सब अर्पण है।
स्वीकार करो यह मेरी प्रार्थना, मेरा जीवन समर्पण है।



अंतर्बोध

माधुरी

देवालय

आज मैंने मंदिर की संभावनाओं को
मूर्त रूप देने का संकल्प लिया है।
जिसकी एक-एक ईंट
ध्यान की ऊर्जा से गढ़ी जानी है।

मन के मंदिर में एक देवालय...
जिसमें,
निराकार,
अरूप,
अनंत ज्योति को
स्थापित करने का संकल्प लिया है।

जो भी भीतर गया दर्शन को,
स्तब्ध लौटता है बाहर।
कोई पूछे, कैसी है छवि उसकी?
क्या बताए कि भीतर क्या देखकर आया है!

वहाँ तो स्वयं अस्तित्व है
दर्पण की तरह...
स्वच्छ!
निर्मल!
जिसमें हर कोई अपनी ही छवि पाता है।

क्या तुम्हारे प्रेम और करुणा के धागे
को पकड़ कर पहुँच सकूँगी
उस अप्रतिम स्रोत तक?
जहाँ बहते हैं प्रेम और भक्ति के अनंत स्रोत!
निरंतर झर-झर!

हाँ,
मैंने अनंत संभावनाओं को
मूर्त रूप देने का संकल्प
लिया है आज!!

रेखाएँ

अनंत शून्य में उभरती
रेखाएँ मात्र हैं,
जो, हैं भी, और नहीं भी!
अपने में लिए
समय और काल की सीमाएँ,
रफ्तार सभी की अपनी है
फिर भी लगती एक सी हैं।

बढ़ती
गढ़ती सपने,
हैं गाती गीत अपने
क्या रंगों की भी सीमा रेखा
खींच पाएंगे इस पटल पर?
और कभी मिल जाए जो ऐसी रेखा
बाँध सके जो स्वरो को?

रेखाएं
रंगों और स्वरो से
बनती-बिगड़ती पलों की अनुभूतियाँ
न होकर भी होती हैं,
समय की सीमा को खुद में समेटे
उसी समय में खो जाती हैं
और दे जाती हैं ढेरों
हंसी-खुशी और गम के आँसू।
स्मृति पटल पर उठती-गिरती
उर्मियों की तरह
अनंत-अनंत रूप लिए
सागर गढ़ती हैं।
या सागर है रचता इनको?
रेखाओं सा है ये जीवन
रेखाओं में पलता है।
रेखाओं में घटता-बढ़ता
रेखाओं में मिटता है।



अमरगाथा: सत्यकाम और सत्यवती

(कथाकार: शिवम जी (दृष्टा))

भाग 1: ब्रह्म जिज्ञासा और सत्यवती का आगमन

सत्यकाम की उम्र 25 वर्ष हो गई थी, लेकिन अभी तक उसके मन में स्त्रियों के प्रति कोई आकर्षण पैदा नहीं हुआ था। वह सत्यभाषी और सरल स्वभाव का युवक था। गुरु मार्तण्ड के पास गुरुकुल में वेदों के अध्ययन में रत था। वेदों का अध्ययन करते हुए उसके मन में ब्रह्म को जानने की तीव्र इच्छा उत्पन्न हो गई। उसने अपने गुरु से एकांत में अपनी जिज्ञासा रखी। गुरु अपने शिष्य के स्वभाव, गुणों और ज्ञान की तीव्र इच्छा से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने सत्यकाम से कहा कि हे सत्यकाम, तुम ब्रह्मज्ञान के उत्तम अधिकारी हो लेकिन अभी थोड़ा सा कच्चापन बाकी है। ज्ञान के अधिकारी में जिज्ञासा के साथ विरक्ति का होना भी नितांत अनिवार्य है, ताकि ज्ञान होते ही चित्त पूरी तरह ज्ञान में स्थित हो जाए। सत्यकाम अपने को बहुत विवेकी और विरक्त समझता था। उसने दोबारा गुरु से आत्मज्ञान देने का करुण निवेदन किया। गुरु ने कहा कि सत्यकाम, तुम्हें अभी एक वर्ष ओर प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। लेकिन सत्यकाम ने कहा कि मैं अब ओर प्रतीक्षा नहीं कर सकता गुरुदेव, अब आत्मज्ञान के बिना जीना संभव नहीं लग रहा है। गुरु शिष्य की प्रबल इच्छा के सामने झुक गए। उन्होंने सत्यकाम को आत्मज्ञान का उपदेश दिया। गुरु के संकेत मात्र से सत्यकाम को अपने स्वरूप का अपरोक्ष ज्ञान हो गया। उसने गुरु को रोते हुए दंडवत प्रणाम किया। गुरु ने कहा, "हे सत्यकाम, तुम्हें ज्ञान लाभ हो चुका है, अब एक वर्ष के लिए एकांत में रहते हुए ज्ञान में डूब जाओ।"



सत्यकाम ने गुरुदेव की कुटिया से थोड़ी दूरी पर ही अपनी कुटिया बना ली और निरंतर निद्विध्यासन में लीन रहने लगा। एक दिन वह शाम को अपनी कुटिया के बाहर टहल रहा था कि उसके कानों में रथ के आने की आवाज सुनाई पड़ी। उसने देखा कि उस राज्य की राजकुमारी सत्यवती रथ पर सवार होकर उसके गुरु के आश्रम की ओर ही आ रही है। वह कुछ उत्सुक हुआ, फिर उसने सोचा मैं तो विरक्त हूँ, मुझे क्या मतलब? और दोबारा टहलने लगा। फिर भी उसके मन में ये जानने की जिज्ञासा बनी ही रही कि एक राजकुमारी का गुरुदेव के पास आने का क्या प्रयोजन हो सकता है।

अगले दिन सुबह होते ही वह गुरुदेव के आश्रम में पहुँच गया। गुरुदेव सत्यकाम को इस तरह सुबह अपने आश्रम में देख कर हैरान और आनंदित हुए। सत्यकाम ने पूछा, "गुरुदेव, राजकुमारी सत्यवती अकेली आपसे मिलने क्यों आई थी?" गुरुदेव मुस्कराए और बोले, "सत्यकाम, राजकुमारी जवान हो चुकी है और उसकी विवाह करने की इच्छा है। लेकिन वह एक उच्च कोटि की तंत्र की साधिका भी है, तो वह एक साधक से ही विवाह करना चाहती है।"

इस पर सत्यकाम को जोर की हंसी आ गई। उसने कहा, "क्षमा करें गुरुदेव, संसारी स्त्री शादी करे तो बात समझ में आती है, लेकिन एक उच्च कोटि की साधिका भी इस दलदल में कूदना चाहती है! ये बड़े आश्चर्य की बात है। मुझे उस पर बहुत दया आ रही है, अगर आप अनुमति दें तो मैं उसे ज्ञान मार्ग पर लाना चाहता हूँ जिससे वह जीवन का मूल उद्देश्य प्राप्त कर सके और मेरी तरह मुक्त जीवन जी सके।" गुरुदेव ने पूछा, "लेकिन तुम्हारी एकांत साधना का क्या होगा?" सत्यकाम ने नम्र होकर कहा, "हे गुरुदेव, मेरी साधना में अगर थोड़ा विघ्न भी आ जाएगा तो क्या हुआ, लेकिन एक साधक तो नर्क में डूबने से बच जाएगा।" गुरुदेव सत्यकाम की करुणा देख मुस्कराए और बोले, "जैसी तुम्हारी इच्छा।"

भाग 2: कुटिया में मिलन और प्रथम उपदेश

कुछ दिन बाद सत्यवती दोबारा गुरुदेव के आश्रम में आई और पुनः अपनी विवाह की इच्छा प्रकट की। इस पर

मार्तण्ड ऋषि ने उन्हें विवाह करने से पहले ज्ञान और वैराग्य की शिक्षा लेने के लिए अपने शिष्य सत्यकाम के पास भेज दिया। सत्यकाम अपनी कुटिया का दरवाजा बंद करके गहरे ध्यान में बैठा हुआ था। राजकुमारी ने दरवाजा खटखटाया तो सत्यकाम का ध्यान भंग हो गया। अंदर से आवाज आई, "कौन?" सत्यवती ने कहा, "आपकी दासी, स्वामी जी।"

सत्यकाम शहद से भी मीठी वाणी को सुनकर हतप्रभ रह गया। उसने कुटिया का दरवाजा खोल दिया और आश्चर्य से देखते हुए कहा, "राजकुमारी सत्यवती, आप इतनी सुबह-सुबह मेरी कुटिया में कैसे आई?" राजकुमारी सत्यकाम को अपलक नेत्रों से देखती ही रह गई। उसने अपने जीवन में सैकड़ों राजकुमार देखे थे, लेकिन उस ब्रह्मचारी के आगे उसे सब सूर्य के समक्ष दीपक के समान लगे। सत्यकाम के अंग-अंग से दिव्य रूप लावण्य की कांति फूट रही थी, लेकिन चेहरे पर जगत के प्रति उपरामता का भाव था। ये देख कर सत्यवती सत्यकाम से और भी ज्यादा प्रभावित हो गई।

सत्यकाम भी राजकुमारी को निहार रहा था। उसने भी पहली बार राजकुमारी को इतनी नजदीक से देखा था। वह इतनी रूपवती थी जैसे इन्द्र की इन्द्राणी हो। लेकिन सत्यकाम के नेत्रों में कोई कामभाव नहीं था; वह सत्यवती की सुंदरता को सहज रूप से प्रकृति की अद्भुत कृति के रूप में निहार रहा था। सत्यवती रूपवती, गुणवती, शस्त्र और शास्त्रों की ज्ञाता होने के साथ-साथ तंत्र की उच्च कोटि की साधिका भी थी। उसका विवाह करने का एक उद्देश्य तांत्रिक सम्भोग के द्वारा ऊर्जा को सप्तम चक्र तक पहुँचा देने का था जहाँ साधक काम से पूरी तरह मुक्त होकर समाधि में तल्लीन हो जाता है।

सत्यकाम को देख कर उसे लगा कि यही मेरे सपनों का राजकुमार है। वह पहली नजर में ही अपना दिल हार बैठी। सत्यकाम ने सत्यवती का स्वागत किया। जब सत्यवती ने अपनी मंशा प्रकट की, तो सत्यकाम जोर से हँसा और बोला, "देवी, विवाह कामी, मूर्ख और अज्ञानी लोगों का कार्य है। ज्ञानी इन बंधनों में नहीं बंधता।" सत्यकाम उसे ज्ञान और संन्यास का उपदेश देने लगा। सत्यवती को उसकी हर बात सुंदर लग रही थी। वह मन ही मन ठान चुकी थी कि वह सत्यकाम को पति रूप में वरण करके ही रहेगी।



भाग 3: नृत्य, ध्यान और विछोह

सत्यवती ने प्रार्थना की कि उसे नित्य प्रति ज्ञान का उपदेश दिया जाए। अगले दिन वह सुबह सात बजे ही पहुँच गई। सत्यकाम तखत के ऊपर पद्मासन में बैठा 'शिवोहम-शिवोहम' गा रहा था। सत्यवती भी उस मधुर वाणी के प्रभाव से नृत्य करने लगी। जब सत्यकाम की आँखें खुलीं, तो उसने उपहास में कहा कि मुझे ऋषि विश्वामित्र और मेनका की याद आ गई। सत्यवती ने कहा, "स्वामी जी, मैं तो आपका गीत सुनकर भाव में डूब गई और नृत्य करने लगी।"

सत्यकाम ने उसे ध्यान का एक गुप्त तरीका बताया। दोनों एक साथ ध्यान में डूब गए। जब आँख खुली तो तीन घंटे गुजर चुके थे। सत्यवती नित्य प्रति आने लगी। वह सत्यकाम के साथ कंदमूल का भोजन करती और हास-परिहास करती। एक माह बीत जाने पर सत्यकाम ने कठोरता से कहा, "राजकुमारी, मेरी शिक्षा पूर्ण हो चुकी है, इसलिए आप कल से मेरे आश्रम में मत आना।"

यह सुनकर सत्यवती के हृदय पर वज्रपात हो गया। वह फूट-फूट कर रोने लगी। सत्यकाम ने कहा, "राजकुमारी, ये तो खुश होने का समय है कि आपका एक भारी बंधन कट गया।" सत्यवती ने जाते हुए कहा, "सत्यकाम, तुम सही में बच्चे हो।"

भाग 4: सत्यकाम का विचलित मन और मिलन

सत्यवती के जाने के बाद सत्यकाम का ध्यान नहीं लग पाया। उसका मन बार-बार सत्यवती की यादों में जाने लगा। उसने सोचा कि शायद सत्यवती को उपदेश की दोबारा जरूरत है। वह उसे खोजने राजमहल पहुँचा। वहाँ सैनिकों ने बताया कि राजकुमारी पड़ोसी राज्य कम्पिल में राजा विराट के पास गई है और वहाँ उनके पुत्र सुबाहु से उसके विवाह की योजना चल रही है।

सत्यकाम विचलित होकर कम्पिल पहुँचा। वहाँ उसने देखा कि राजकुमारी उसका चित्र बना रही है। सत्यवती ने जब सत्यकाम को देखा तो वह भाव-विह्वल होकर रोने लगी। सत्यकाम ने उसकी दुर्दशा देखी तो उसकी आँखों में भी आँसू आ गए। सत्यवती ने युक्ति चली और कहा, "स्वामी जी, कल मेरा विवाह राजकुमार सुबाहु से तय होने जा रहा है, आप हमें आशीर्वाद दें।" यह सुनकर सत्यकाम की हालत बिन पानी की मछली जैसी हो गई। उसके मुँह से निकल गया, "मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकता सत्यवती।"

सत्यकाम को अपनी गलती का अहसास हुआ कि उसने गुरु की एक वर्ष प्रतीक्षा करने की आज्ञा नहीं मानी थी। उसके भीतर दबी हुई स्त्री प्रेम की इच्छा जागृत हो गई थी। सत्यवती ने प्रस्ताव रखा कि यदि वह उससे विवाह करे तो वह सुबाहु को मना कर देगी। सत्यकाम ने एक दिन का समय माँगा और गुरु मार्तण्ड के पास पहुँचा।

भाग 5: गुरु का मार्गदर्शन और 5 वर्ष की साधना

गुरुदेव सत्यकाम की हालत देख कर हँसे और बोले, "पुत्र, गुलाब भी तोड़ना चाहते हो और काँटों के चुभने से भी डर रहे हो? मुझे पता था कि तुम्हारे भीतर स्त्री प्रेम के संस्कार जागृत होने वाले हैं।" गुरुदेव ने बताया कि स्त्री स्वभाव से संबंधों में स्थायित्व चाहती है। गुरु ने सत्यकाम को कम्पिल जाकर सत्यवती को आश्रम बुलाने को कहा।

आश्रम में गुरुदेव ने दोनों को समझाया, "प्रेम करने के लिए साथ आवश्यक है, न कि शादी। जब तक आकर्षण है, आनंद लो और उसका उपयोग आध्यात्मिक विकास के लिए करो।" गुरुदेव ने भविष्य की चेतावनी दी कि यदि उन्होंने अभी

विवाह किया, तो सत्यकाम बाद में संन्यास ले लेगा और सत्यवती वियोग में प्राण त्याग देगी। गुरु ने आज्ञा दी कि सत्यवती पाँच वर्ष के लिए आश्रम में रहकर सत्यकाम के साथ साधना करे।

भाग 6: राग से वैराग्य और 'माँ' का संबोधन

सत्यवती अपने माता-पिता के साथ आश्रम आई। महाराज ने बताया कि महात्मा ने पहले ही कहा था कि यह पुत्री पूरे कुल को पवित्र करने वाली ज्ञानी और योगी होगी। दो वर्ष तक सत्यकाम और सत्यवती मौन सानिध्य और प्रेम में डूबे रहे। गुरुदेव ने उन्हें नहीं टोका क्योंकि वे जानते थे कि दबी हुई इच्छा का पूरा होना अनिवार्य है।

तीसरे वर्ष में राग स्वतः वैराग्य में बदलने लगा। सत्यवती की समाधि लगने लगी और वह आत्मानंद में डूब गई। सत्यकाम अभी भी पीछे था, वह सत्यवती की अद्भुत अवस्था देखकर अभिभूत हो गया। चौथे वर्ष के अंत में, जब सत्यकाम को समाधि लाभ नहीं हुआ, तो वह रोते हुए सत्यवती के पास गया। सत्यवती के हृदय से मातृ-तुल्य करुणा फूटी। उसने सत्यकाम के सिर पर हाथ रखा और कहा, "शांति लाभ हो।"

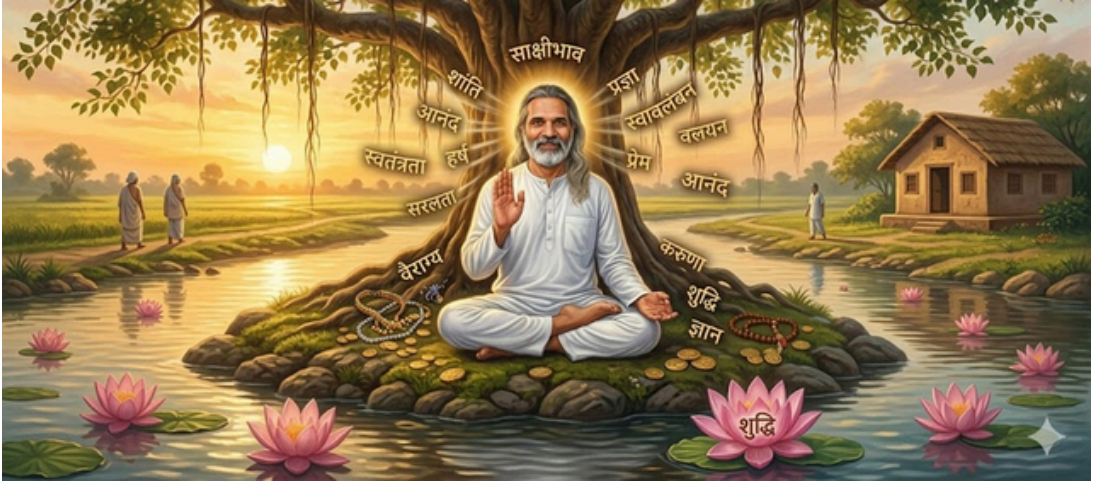
सत्यकाम की समाधि लग गई। दो दिन बाद जब वह समाधि से बाहर आया, तो उसने हाथ जोड़कर सत्यवती को देखा और उसके मुख से पहला शब्द निकला— "माँ"।

पाँचवें वर्ष में दोनों ने एकांत साधना की और एक-दूसरे को पूरी तरह भूल गए। जब वे गुरुदेव के समक्ष आए, तो गुरुदेव की आँखों में प्रेम के आँसू थे। उन्होंने कहा, "मेरे बच्चों, अब तुम संसार में रहो या वन में, साथ रहो या अलग, सब बराबर है। तुम्हारा मृत लोक में आना सफल हुआ।" दोनों गुरुदेव को प्रणाम कर अपने-अपने स्थान लौट गए।



आध्यात्मिक प्रगति के चिह्न

सतगुरु श्री तरुण प्रधान जी



यह लेख ज्ञान मार्ग के दृष्टिकोण से आध्यात्मिक प्रगति के सामान्य चिह्नों का विवरण प्रस्तुत करता है। यह अन्य मार्गों पर लागू नहीं होगा।

मैं कैसे जानूँ कि मैं प्रगति कर रहा/रही हूँ?

बहुत सरल है - यदि आप अपने आध्यात्मिक लक्ष्य के निकट पहुँच रहे हैं, तो आप प्रगति कर रहे हैं। यह प्रश्न केवल तभी उठता है जब कोई स्पष्ट लक्ष्य न हो। ज्ञान मार्ग में लक्ष्य है - अज्ञान का पूर्ण विनाश। यहाँ अज्ञान का अर्थ है - अंधविश्वास, सामाजिक संस्कार, अंधानुकरण, पूर्वाग्रह, मान्यताएं आदि - वे सभी बातें जिन्हें बिना प्रमाण के सत्य मान लिया गया हो। यदि ये सब नष्ट हो रहे हैं, तो आप प्रगति कर रहे हैं।

यदि कोई स्पष्ट आध्यात्मिक लक्ष्य नहीं है, तो आप कुछ भी करें, प्रगति नहीं होगी। यदि कोई गंतव्य नहीं है, तो आप कहीं भी जाएँ, भटकाव ही रहेगा। कभी-कभी साधक कुछ अनुभवों या घटनाओं को प्रगति का चिह्न मान लेते हैं। परंतु यह केवल भ्रम है। दूसरा, यदि सही मार्ग या मार्गदर्शक नहीं है, तो प्रगति संभव नहीं।

यदि प्रगति या उसकी मात्रा को लेकर संदेह हो, तो अपने गुरु या मार्गदर्शक से परामर्श करना उत्तम है। वे अपने दीर्घ अनुभव के कारण आपकी स्थिति को आपसे बेहतर समझ सकते हैं। यदि कोई मार्ग या गुरु नहीं है, तो पहला कदम मार्ग और गुरु प्राप्त करना है। यही अपने आप में एक बड़ी प्रगति है। इसके पश्चात यात्रा सरल और तीव्र हो जाती है।

प्रगति के क्या चिह्न हैं?

सामान्यतः एक नए साधक को यह समझ नहीं होती कि आध्यात्मिक प्रगति का "अनुभव" कैसा होता है। अतः यहाँ कुछ चिह्न दिए गए हैं जो आपको पहचानने में सहायता करेंगे। परंतु याद रखें ये सभी पर लागू नहीं होते। कुछ आपमें दिख सकते हैं, कुछ नहीं। ये नियम नहीं हैं, केवल सामान्य प्रेक्षण हैं। अंतिम मूल्यांकन सदैव आपके गुरु द्वारा ही होता है।

साक्षीभाव: आपके वास्तविक स्वरूप और संसार की मायावी प्रकृति का ज्ञान स्थिर हो जाएगा। आप ज्ञान में अधिकाधिक स्थिति रहेंगे, और अज्ञान या अज्ञानपूर्ण विचार समाप्त हो जाएँगे।

शान्ति: आपके विचार, भावनाएँ, वाणी और कर्म शांत हो जाएँगे। केवल आवश्यक घटित होगा। चिंता, व्यग्रता, अशांति, संदेह, प्रश्न आदि कम हो जाएँगे।

आनंद: आप स्वाभाविक रूप से आनंदित रहेंगे। बिना किसी प्रयास के, सभी परिस्थितियों में समभाव रहेंगे।

हर्ष: आप वस्तुओं, लोगों या उपलब्धियों, जो पहले आपको प्रसन्न करते थे, के बिना भी प्रसन्नचित्त रहेंगे। सुख के लिए किसी पर निर्भर नहीं रहेंगे।

स्वतंत्रता: आप स्वतंत्र जीवन का आनंद लेंगे। आप वह करेंगे जो आपको पसंद है, न कि वह जो आप पर थोपा गया हो। वास्तविक बंधन मानसिक है, और ज्ञान एवं निरंतर साक्षीभाव के अभ्यास से यह टूट जाएगा।

प्रज्ञा: आपकी समग्र बुद्धिमत्ता बहुत बढ़ जाएगी। इसका अर्थ यह नहीं कि आप रातोंरात वैज्ञानिक या गणितज्ञ बन जाएँगे, बल्कि आपके दैनिक कार्य और निर्णय बुद्धिमत्ता से भरे होंगे। आप अधिक भूलेंगे नहीं। स्पष्टता प्राप्त होगी।

सरलता: आप सीखेंगे कि "कम ही अधिक है"। आप अपने जीवन से सभी अनावश्यक वस्तुओं - जैसे वस्तुएँ, लोग, नौकरियाँ, रिश्तेदार आदि - को छोड़ देंगे। आप देखेंगे कि त्याग में आनंद है।

प्रेम और करुणा: ये बढ़ेंगे और सभी प्राणियों के प्रति सार्वभौमिक रूप से अनुभव किए जाएँगे। आप वास्तव में निःस्वार्थ प्रेम करना जान जाएँगे। आप दूसरों से प्रेम, साथ या सहायता माँगने के बजाय यह सब देने की इच्छा करेंगे।

स्वावलंबन: आप धीरे-धीरे सभी प्रकार की निर्भरताओं - चाहे वह आर्थिक हो, संबंधों की हो या भावनात्मक - से मुक्त हो जाएँगे। आप अपने पैरों पर खड़े होंगे। आप किसी भी चीज़ से बंधे नहीं रहेंगे।

वैराग्य: आप अनावश्यक वस्तुओं, लोगों या कर्मों से विरक्त हो जाएँगे। वैराग्य का अर्थ घृणा नहीं है, बल्कि यह है कि सब कुछ ठीक है - न किसी से लगाव, न किसी के पीछे भागना।

ज्ञान: आपको बाहरी सहायता के बिना प्रेरणा और अंतर्दृष्टि प्राप्त होगी। आप अस्तित्व के रहस्यों को स्वयं खोज लेंगे। सभी उत्तर बिना प्रयास के आपके सामने प्रकट होंगे।

प्रतिभा और क्षमताएँ: ये आपके दैनिक क्रियाकलापों में अभिव्यक्त होंगी। आप अपने आंतरिक आनंद को कला और कौशल के माध्यम से व्यक्त करेंगे। आपकी क्षमताएँ दूसरों को भी आनंदित करेंगी।

शुद्धि: सभी प्रकार की अशुद्धियाँ - शारीरिक या मानसिक, धीरे-धीरे दूर हो जाएँगी। साक्षीभाव में जीवनयापन के परिणामस्वरूप शुद्धि होती है, और यह आध्यात्मिक प्रगति को गति देती है।

सौंदर्य और स्वास्थ्य: शुद्धि के प्रत्यक्ष परिणामस्वरूप आपका स्वास्थ्य और सौंदर्य बढ़ेगा। आपके प्रेमपूर्ण स्वभाव और बुद्धिमत्ता के कारण लोग आपकी ओर आकर्षित होंगे।

मार्गदर्शन: आप किसी के भी व्यक्तिगत या आध्यात्मिक मामलों में मार्गदर्शन कर सकेंगे। आप ज्ञान को सहजता से संप्रेषित कर सकेंगे। आप दूसरों की कठिनाइयों को

समझेंगे और उनका समाधान कर सकेंगे। आपकी निःस्वार्थ सेवा नए साधकों को आकर्षित करेगी।

किन्हें प्रगति का चिह्न नहीं माना जा सकता?

असामान्य अनुभव: कोई भी असामान्य अनुभव जैसे दिव्य दृष्टि, संवेदनाएँ, चमत्कार आदि, प्रगति का चिह्न नहीं हैं। ये सभी में नहीं होते और बिना इनके भी प्रगति संभव है। कुछ दुर्लभ मामलों में ये प्रगति के अतिरिक्त प्रभाव हो सकते हैं, परंतु ये होना आवश्यक नहीं।

असाधारण स्वप्न: स्वप्न प्रायः आध्यात्मिक प्रगति का संकेत नहीं देते। प्रगति जागृत अवस्था में स्पष्ट दिखती है, किसी अस्पष्ट या भ्रामक स्वप्न में नहीं। स्वप्न का कोई भी अर्थ हो सकता है, अतः उनके आधार पर प्रगति का आकलन न करें।

वाद-विवाद की प्रवृत्ति: बहस करने, अपने ज्ञान या उपलब्धियों का प्रदर्शन करने की प्रवृत्ति प्रगति नहीं, बल्कि अवरोध है। सदैव सही साबित होने की इच्छा या दूसरों को गलत ठहराना अहंकार है। बहस में जीतने पर भी आपकी प्रगति नहीं होती। और हारने पर सीख के बजाय आपमें कट्टरता, क्रोध और कड़वाहट आती है, और अपयश होता है, अन्य साधक या शिक्षक दूरी बना लेते हैं।

किताबी ज्ञान: सूचनाएँ एकत्र करके स्मृति में भरना वास्तविक ज्ञान नहीं है। यह आपको केवल एक "तोता" या "हाई ड्राइव" बना देता है। ज्ञान सीधे अनुभव से आता है और एक अच्छे शिक्षक की आवश्यकता होती है। पुस्तकें आरंभ में सहायक हैं, परंतु आध्यात्मिक प्रगति का अर्थ पूर्ण रूपांतरण है, जो केवल साधना से होगा।

अजीब संयोग: कभी-कभी कोई असामान्य संयोग प्रगति का संकेत मान लिया जाता है, या कोई बुरा संयोग गलत मार्ग पर होने का संकेत। परंतु यह अंधविश्वास है। यादृच्छिक घटनाएँ आपकी प्रगति को निर्धारित नहीं करतीं। आध्यात्मिकता यादृच्छिक नहीं, बल्कि तर्कसंगत और व्यवस्थित है, आपको प्रत्यक्ष परिणाम दिखेंगे।

असामान्य लक्षण: शरीर में असामान्य लक्षण प्रगति का संकेत नहीं हैं। कभी-कभी शुद्धि के कारण ये होते हैं और समाप्त हो जाते हैं। यदि ये पीड़ादायक और लंबे समय तक रहें, तो ये किसी रोग का संकेत हो सकते हैं। यदि ये किसी साधना के कारण हों, तो उसे रोक दें और गुरु से परामर्श करें। असामान्य लक्षणों को प्रगति का चिह्न मानकर स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ न बढ़ाएं।

gyanmarg.guru

❖ gyanmarg.guru एक जीवंत आध्यात्मिक शिक्षण-धारा के रूप में प्रकट होती है, जहाँ आत्मबोध की दिशा संकेतित होती है, और साधक अपने ही अनुभव में परम तत्त्व को जानने लगता है।

❖ यहाँ आध्यात्मिक यात्रा एक क्रमबद्ध प्रक्रिया के रूप में घटित होती है—

जिज्ञासा, गुरु-संकेत, साधना और साधना का अंत—
जिसमें साधक धीरे-धीरे अपने ही स्वरूप में स्थित होता जाता है।

❖ इसी ज्ञानधारा में भारत एवं अन्य देशों में, आश्रमों, ऑनलाइन तथा प्रत्यक्ष (जीवित गुरु की उपस्थिति सहित) सत्संगों के माध्यम से ज्ञान का संप्रेषण स्वाभाविक रूप से प्रवाहित होता रहता है। जिससे अज्ञान का नाश और जागृति का उदय सहज ही घटित होता है।

❖ यहाँ ज्ञान अपने मौलिक स्वरूप—सरल, सहज और निःशुल्क उपलब्ध है, जो जिज्ञासा के अनुसार सुलभ है।

भाग्यशाली होना: भौतिक वस्तुएँ प्राप्त करना, संयोगवश अच्छी घटनाएँ होना, नए मित्र मिलना आदि आध्यात्मिक प्रगति का संकेत नहीं हैं।

पशुओं का दिखना: साँप, हंस, उल्लू या काली बिल्ली दिखने का अर्थ यह नहीं कि आपने बहुत प्रगति कर ली है। आध्यात्मिक प्रगति वास्तव में ऐसी मूर्खताओं और अंधविश्वासों को समाप्त कर देती है।

संबंध: पुराने संबंधों का टूटना प्रगति का परिणाम हो सकता है, परंतु नए संबंध बनाना या मौजूदा संबंधों में सुधार प्रगति का संकेत नहीं है। निर्भरता-आधारित संबंध बनाना प्रगति के मंद होने का संकेत है।

नौकरियाँ: नौकरी छूटना या नई नौकरी मिलना कुछ नहीं बताता। हालाँकि, यदि आप अपने प्रयासों और कौशल से कोई पसंदीदा नौकरी पाते हैं या जानबूझकर बुरी नौकरी छोड़ते हैं, तो यह प्रगति हो सकती है।

भौतिक लाभ: ये आपकी प्रगति को रोकेंगे नहीं, परंतु इनसे आध्यात्मिक उन्नति का आकलन नहीं होता। सामान्यतः भौतिक लाभ या हानि के प्रति वैराग्य दिखता है। इनके प्रति आसक्ति, घृणा या इनके पीछे भागना पतन का चिह्न है।

विचारों को रोकना: विचारों या इच्छाओं को जबरदस्ती या मनमानी साधना से दबाना प्रगति के बजाय हानि पहुँचाता है। यदि विचार स्वाभाविक रूप से रुकते और आवश्यकतानुसार आते हैं, तो यह अच्छा चिह्न है।

मानसिक अवस्थाएँ: किसी विशेष मानसिक अवस्था को प्राप्त करना प्रगति नहीं है। ये आती-जाती रहती हैं। सभी अवस्थाओं में समभाव रहना शांति लाता है और प्रगति को

गति देता है। किसी अजीब मानसिक अवस्था को जबरन लाना अप्राकृतिक और हानिकारक है, खासकर जब यह उचित मार्ग के बिना या गुरु से परामर्श किए बिना किया जाए। यह मानना कि केवल किसी जादुई मानसिक अवस्था को प्राप्त करने से ही प्रगति होगी, अज्ञानता है। आप पहले से ही परम और सम्पूर्ण हैं।

तुलना: दूसरों के साथ अपनी प्रगति की तुलना करना अक्सर सही आकलन नहीं देता। प्रत्येक व्यक्ति अद्वितीय है और सभी अपनी क्षमतानुसार प्रगति करते हैं कोई तेज़, कोई धीमे, किसी का पतन भी होगा। इसी प्रकार, दूसरों की प्रगति या कमियों पर टिप्पणी करना अपरिपक्वता और अहंकार का चिह्न है। यह गुरु का कार्य है। आपका कार्य केवल अपनी प्रगति सुनिश्चित करना है, दूसरों का मूल्यांकन करना नहीं।

निष्कर्ष

संक्षेप में, एक बुद्धिमान साधक/साधिका को आध्यात्मिक प्रगति के अर्थ के विषय में भ्रमित नहीं होना चाहिए। आपको किसी भी प्रगति के मापदंड पर यहाँ-वहाँ सुनकर या पढ़कर अंधविश्वास नहीं करना चाहिए। अपने मार्ग और साधना को अच्छी तरह जानें। उसके सटीक फलों को समझें, अपनी प्रगति का आकलन उसी के अनुसार करें, जुआ न खेलें। अनुमान लगाने के बजाय अपने गुरु से पूछना सर्वोत्तम है।

आशा है यह संक्षिप्त लेख सभी साधकों के लिए उपयोगी होगा और वे अपने आध्यात्मिक लक्ष्यों को सरलता व शीघ्रता से प्राप्त करेंगे तथा सभी अपनी उपलब्धियों का आनंद लेंगे।

मैं कौन हूँ? आत्मज्ञान

गुरु माँ शून्य

आत्मज्ञान

आत्मज्ञान का अर्थ है आत्मा का ज्ञान या —

- स्वयं का ज्ञान
- मैं कौन हूँ?
- आत्मा तक पहुँचना
- स्व का ज्ञान
- अपने स्वरूप को जानना
- अहंकार का नाश हो जाना
- आत्म साक्षरता
- आत्म-साक्षात्कार
- सेल्फ-रियलाइजेशन (Self-Realization)
- स्व बोध आदि



मनुष्य के जीवन में आत्म ज्ञान का महत्व —

जिस प्रकार एक अध्यापक को यदि यह नहीं पता कि वह अध्यापक है, तो वह अपना काम (पढ़ाना) सही से नहीं कर पाएगा। यदि एक डॉक्टर को नहीं पता कि वह डॉक्टर है तो वह उपचार सही से नहीं कर पाएगा। कहने का अर्थ यह है कि कार्यों को सही दिशा देने के लिए यह आवश्यक है कि जाना जाए मैं कौन हूँ। आत्मज्ञान होने पर हमारे जीवन को सही गति व दिशा मिलती है। बिना आत्मज्ञान के मनुष्य बाहरी दबाव (समाज, सम्बन्ध, रिश्तेदार, स्थिति व परिस्थितियाँ आदि) के कारण कार्य करता रहता है। कभी किसी के प्रभाव में आने के लिए तो कभी किसी से प्रभावित होकर।

यह गति निरन्तर होती रहती है और होती रहेगी, परन्तु अनियंत्रित गति विनाश लाती है। इसीलिए आत्मज्ञान का मनुष्य जीवन में बहुत महत्व है।

आत्मज्ञान के लाभ —

आत्मज्ञान के बहुत लाभ हैं। मनुष्य जीवन के सभी पड़ाव (चारों आश्रम) पर इसका प्रभाव पड़ता है।

व्यक्तिगत रूप से

संबंधों पर

समाज के उत्थान के लिए

उत्तर जीविता पर

आत्मज्ञान प्राप्त करने की विधि — (नेति – नेति)

“मैं कौन हूँ?” इसका उत्तर खोजने चलते हैं तो नेति

नेति विधि का प्रयोग कर सकते हैं।

नेति-नेति का अर्थ है — ना यह ना वह।

यह एक नकारात्मक विधि है।

इस विधि के अन्तर्गत “मैं” की खोज की जाती है।

जो “मैं” नहीं है उसको हटा दिया जाता है।

इस तरह “मैं नहीं हूँ” उसको हटाते हटाते हम वहाँ पहुँच जाते हैं जहाँ “मैं हूँ”।

या जो शेष बचा वही “मैं” हूँ।

मनुष्य अपने जीवन में तीन प्रकार के अनुभवों का अनुभव करता है।

1 → जगत का अनुभव

2 → अपने शरीर का अनुभव

3 → अपने मन का अनुभव

मनुष्य के जीवन में इन तीन अनुभवों के अलावा और कोई अनुभव नहीं होते। अगर होते हो तो मुझे जरूर बतायें।

अब हम लोग एक-एक करके “मैं” की खोजेंगे परन्तु साथ में दो नियम और लगायेंगे —

- जिसका मुझे अनुभव हो रहा है वह “मैं” नहीं हूँ। (और उसे हटा देंगे)
- जिसमें परिवर्तन है वह “मैं” नहीं हूँ। (उसे भी हटा देंगे)

पहला जगत —

जगत की एक-एक वस्तु / सभी वस्तुओं पर दोनों नियम लगाते चलो और हटाते चलो।

उदाहरण —

- पेड़ पौधे
- पशु जानवर
- पक्षी
- मकान, सड़क, वाहन
- धरती आदि आदि

अब पहला नियम लगाओ — क्या इनका अनुभव हो रहा है।

जवाब आयेगा — हाँ

मनुष्य को जगत का अनुभव अपनी पाँच भौतिक इन्द्रियों से होता है —

आँख — देखने का अनुभव

नाक — सूँघने का अनुभव

कान — सुनने का अनुभव

मुँह — स्वाद का अनुभव

त्वचा — स्पर्श का अनुभव

अब दूसरा नियम लगाओ — क्या इनमें परिवर्तन है।

जवाब आयेगा — हाँ

तब जगत को हटा दीजिए।

जगत में “मैं” कौन / क्या है नहीं मिला।

दूसरा शरीर —

हमें अपने शरीर का अनुभव पाँच भौतिक इन्द्रियों के साथ साथ आन्तरिक इन्द्रियों से होता है।

पाँच भौतिक इन्द्रियाँ जो शरीर के बाहरी आवरण का अनुभव कराती हैं।

आन्तरिक इन्द्रियाँ जो शरीर के आन्तरिक अनुभवों का ज्ञान देती हैं।

जैसे —

भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, दर्द, पेट दर्द आदि का अनुभव।

पहला नियम लगाओ — क्या शरीर का अनुभव होता है?

जवाब — हाँ

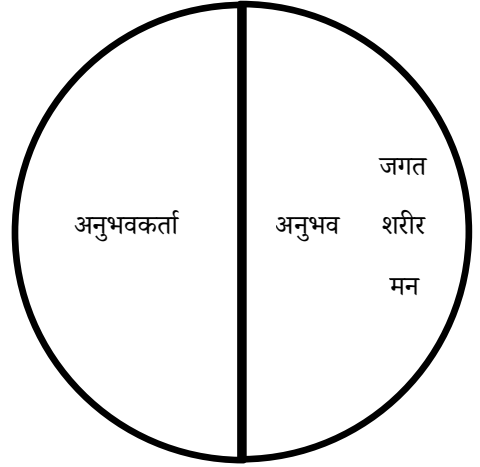
दूसरा नियम — क्या इसमें परिवर्तन है?

जवाब — हाँ

शरीर में परिवर्तन — बच्चा → जवान → बूढ़ा

आन्तरिक परिवर्तन —

भूख लगी → खाना खाया → भूख मिट गयी।



तीसरा मन —

मन के अनुभव —

- विचार
- भाव
- कल्पना
- इच्छा आदि

मन का अनुभव मानसिक इन्द्रियों से होता है।

पहला नियम लगाओ — क्या विचार, भाव, इच्छा, कल्पना आदि का अनुभव होता है?

जवाब — हाँ

दूसरा नियम — क्या इनमें परिवर्तन है?

जवाब — हाँ

इसका मतलब — मैं मन भी नहीं।

मन को भी हटा दो।

अब हम यहाँ पहुँचे कि —

→ ना “मैं” जगत या जगत की कोई वस्तु हूँ

→ ना “मैं” शरीर हूँ या शरीर की कोई क्रिया हूँ

→ ना “मैं” मन हूँ या मन की कोई क्रिया हूँ

अब “मैं” को खोजने का कोई स्थान शेष नहीं बचा क्योंकि इन तीनों के अलावा मनुष्य का कोई अनुभव नहीं।

तो फिर “मैं” कौन हूँ?

इन तीनों को हटाने के बाद जो शेष बचा वही “मैं” हूँ।

मैं अनुभव (दृश्य) नहीं।

इन अनुभवों को अनुभव करने वाला अनुभवकर्ता (दृष्टा) हूँ।



साक्षीभाव – होना, न कि करना

अश्विन



साक्षीभाव को समझने के लिए पहले यह देखना आवश्यक है कि अस्तित्व में वास्तव में क्या है।

यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए, तो केवल दो ही तत्त्व स्पष्ट होते हैं—

एक, जो अनुभव हो रहा है...

और दूसरा, जो उन अनुभवों को जान रहा है।

जो जान रहा है—वही साक्षी है।

और जो जाना जा रहा है—वह दृश्य है, अनुभव है।

साक्षी क्या है?

साक्षी वह है जो निरंतर उपस्थित है,

जो हर अनुभव—विचार, भावना, इच्छा, शरीर, जगत—सबको जान रहा है,

परंतु स्वयं उनसे प्रभावित नहीं होता।

वह न बदलता है, न उत्पन्न होता है, न नष्ट होता है।

उसे केवल नकारा नहीं जा सकता—क्योंकि वही तो जानने की आधारभूमि है।

साक्षीभाव क्या है?

जब यह स्पष्टता स्थिर हो जाती है कि

“मैं अनुभव नहीं, बल्कि अनुभवों का जानने वाला हूँ”

तभी साक्षीभाव कहा जा सकता है।

यह कोई नई अवस्था प्राप्त करना नहीं है,

बल्कि यह देख लेना है कि

जो कुछ भी बदल रहा है—वह “मैं” नहीं हूँ।

शरीर बदलता है।

विचार बदलते हैं।

भावनाएँ आती-जाती हैं।

पर जो इन सबको जान रहा है—वह अपरिवर्तित है।

उसी में स्थित होना—साक्षीभाव है।

साक्षीभाव साधना नहीं, स्पष्टता है

अक्सर यह प्रश्न उठता है कि साक्षीभाव की साधना कैसे की जाए।

पर वास्तव में, साक्षीभाव कोई करने की वस्तु नहीं है।

यह पहले से ही उपस्थित है।

साधना का स्थान केवल वहाँ है

जहाँ गलत मान्यताओं को हटाना हो।

बचपन से जो धारणाएँ बनी हैं—

“मैं शरीर हूँ”, “मैं मन हूँ”, “मैं कर्ता हूँ”—

इनका त्याग ही वास्तविक साधना है।

ध्यान का स्थान

ध्यान प्रारंभ में सहायक हो सकता है—

चित्त को स्थिर करने के लिए।

परंतु यदि ध्यान को ही आधार बना लिया जाए,

तो वही बाधा बन सकता है।

जैसे साइकिल सीखते समय सहायक पहिए लगते हैं,

पर बाद में उन्हें हटाना पड़ता है—

वैसे ही ध्यान भी केवल प्रारंभिक सहारा है।

साक्षीभाव और जीवन

साक्षीभाव में जीवन रुकता नहीं,

बल्कि अधिक स्पष्ट और सहज हो जाता है।

कर्म होते रहते हैं,

सूक्ष्म संकेत

- साक्षीभाव भी एक चित्तवृत्ति की तरह आता-जाता दिखाई देता है, पर जो उसे जान रहा है—वह स्वयं साक्षी है।
- साक्षीभाव में आनंद और शांति अलग से लानी नहीं पड़ती—
- वे उसके स्वभाव में ही उपस्थित हैं।
- साक्षीभाव को बनाए रखने का प्रयास ही बाधा बन सकता है—
- क्योंकि यह “होना” है, “करना” नहीं।
- जब अनुभव के पीछे भागना रुकता है, तभी साक्षी स्पष्ट होता है।

पर कर्ताभाव नहीं रहता।

दुख आता है—पर “मैं दुखी हूँ” यह भ्रान्ति नहीं रहती।

अनुभव आते हैं—पर उनसे बंधन नहीं बनता।

धीरे-धीरे एक आंतरिक शांति पृष्ठभूमि में स्थिर हो जाती है।

एक महत्वपूर्ण भ्रान्ति

कई साधक किसी विशेष अनुभव को ही आत्मबोध मान लेते हैं।

वे किसी अद्भुत अनुभूति, प्रकाश, आनंद या दृश्य के पीछे भागते हैं।

परंतु जो भी अनुभव है—

वह दृश्य है, बदलने वाला है।

साक्षी वह है जो इन सबको देख रहा है।

इसलिए अनुभव के पीछे भागना,

साक्षी से दूर ले जाता है।

साक्षीभाव का स्वभाव

साक्षीभाव प्रयास से नहीं आता।

यह स्मरण से स्पष्ट होता है।

जैसे ही यह देखा जाता है कि

“यह भी बदल रहा है”—

वहीं साक्षी स्पष्ट हो जाता है।

धीरे-धीरे यह स्मृति स्थिर होने लगती है,

और एक सहज स्थिति बन जाती है।

गुरु और साक्षीभाव

जब तक व्यक्ति स्वयं को अनुभवों से अलग नहीं देख पाता, तब तक मार्गदर्शन की आवश्यकता रहती है।

गुरु का कार्य कुछ नया देना नहीं,

बल्कि जो असत्य है उसे हटाना है।

जब अज्ञान का नाश होता है,

तो साक्षीभाव स्वाभाविक रूप से प्रकट होता है।

साक्षीभाव के संकेत

जब साक्षीभाव स्पष्ट होता है, तो—

- विचारों पर सहज नियंत्रण आने लगता है
- प्रतिक्रियाएँ कम होने लगती हैं
- भीतर एक स्थिर शांति बनी रहती है
- प्रेम और स्पष्टता बढ़ने लगती है

यह कोई प्रयास का परिणाम नहीं,

बल्कि स्पष्टता का प्रभाव है।

निष्कर्ष

साक्षीभाव कोई साधना का लक्ष्य नहीं,

बल्कि स्वभाव की पहचान है।

यह कुछ पाने से नहीं,

बल्कि जो “नहीं है” उसे छोड़ने से प्रकट होता है।

जो शेष रह जाता है—

वही साक्षी है,

वही आत्मा है,

वही शांति और आनंद का मूल है।

एक दृष्टांत

एक साधक अपने गुरु के पास गया और बोला—

“मैं हर अवस्था में साक्षीभाव में रहना चाहता हूँ।”

गुरु उसे नदी में ले गए और उसका सिर पानी में डुबो दिया।

कुछ क्षण बाद जब वह छटपटाकर बाहर आया,

गुरु ने पूछा—“उस समय क्या चाह रहे थे?”

साधक बोला—“बस एक ही इच्छा थी—सांस लेने की।”

गुरु बोले—“जब साक्षीभाव के लिए भी ऐसी ही तीव्रता होगी, तब वह अपने आप स्थिर हो जाएगा।”

द्वैत के कोलाहल में अद्वैत का मौन

आदिसत्व



प्रश्न जो उत्तर बन गया

मनुष्य का पूरा जीवन एक अनकही खोज में व्यतीत होता है। हम सुख खोजते हैं, शांति खोजते हैं, और सबसे बढ़कर, हम 'पूर्णता' खोजते हैं। लेकिन विडंबना यह है कि हम उस 'पूर्णता' को वहां खोज रहे हैं जहां केवल 'खंड' (fragmentation) है—बाहरी संसार में। अद्वैत वेदांत केवल एक दर्शन नहीं है; यह उस खोज का अंतिम पड़ाव है, जहाँ खोजने वाला और जिसे खोजा जा रहा है, दोनों एक हो जाते हैं। आज, जब हम आध्यात्मिक चर्चा करते हैं, तो हमें यह समझना होगा कि यह चर्चा बुद्धि का विलास नहीं, बल्कि अस्तित्व की पुकार है।

माया का दर्पण और 'मैं' का भ्रम

अद्वैत वेदांत का मूल उद्घोष है—"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः" (ब्रह्म ही सत्य है, जगत मिथ्या है, और जीव ब्रह्म से अलग नहीं है)। लेकिन, एक सामान्य साधक के लिए यह समझना सबसे कठिन है कि जिस संसार को वह छू सकता है, देख सकता है, वह 'मिथ्या' कैसे हो सकता है? हमारी चर्चाओं में हम अक्सर इस बात पर जोर देते हैं कि 'मिथ्या' का अर्थ 'असत्य' नहीं है, बल्कि 'अस्थायी' है। जैसे स्वप्न में शेर का डर वास्तविक होता है, जिससे पसीना भी आ जाता है, लेकिन जागने पर शेर का अस्तित्व ही नहीं रहता। ठीक वैसे ही, यह जागतिक प्रपंच हमारी चेतना (Consciousness) के पटल पर चल रहा एक

दीर्घकालिक स्वप्न है।

दुःख का मूल कारण 'अज्ञान' है। यह अज्ञान यह नहीं है कि हमें गणित या विज्ञान नहीं आता; अज्ञान यह है कि हमने अपने 'साक्षी स्वरूप' (The Witness) को भूलकर, स्वयं को मन और शरीर के सीमित पिंजरे में कैद मान लिया है। हमने लहर होकर खुद को समुद्र से अलग समझ लिया है, और यही 'द्वैत' (Duality) हमारे भय और मृत्यु का कारण है।

आध्यात्मिक मृत्यु: अहंकार का विसर्जन

साधना के पथ पर, विशेषकर ज्ञान मार्ग में, हम अक्सर 'आध्यात्मिक मृत्यु' (Spiritual Death) की बात करते हैं। यह शरीर की मृत्यु नहीं है, बल्कि उस झूठे 'मैं' (Ego) की मृत्यु है जो हमें परमात्मा से अलग करता है।

जब तक एक साधक यह सोचता है कि "मैं ध्यान कर रहा हूँ," "मैं ज्ञानी हूँ," या "मैं मुक्त होना चाहता हूँ," तब तक वह बंधन में है। क्योंकि चाहने वाला 'मैं' अभी भी जीवित है। उपनिषदों का सार यही है कि जब 'मैं' मिटता है, तभी 'वह' प्रकट होता है। वास्तव में, 'वह' प्रकट नहीं होता, बल्कि यह भ्रांति टूट जाती है कि 'वह' कभी अनुपस्थित था।

जैसे एक मिट्टी का घड़ा आकाश (Space) को अपने अंदर और बाहर अलग-अलग मानता है—'घटाकाश' और 'महाकाश'। लेकिन जिस क्षण घड़ा फूटता है, अंदर और बाहर का भेद समाप्त हो जाता है।

सूत्र:

जहाँ द्वैत है, वहाँ कोलाहल है।

जहाँ अद्वैत है, वहाँ मौन स्वयं प्रकट है।

आध्यात्मिक साधना उस घड़े को फोड़ने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया पीड़ादायक हो सकती है क्योंकि अहंकार अपनी सत्ता आसानी से नहीं छोड़ता, लेकिन यही मोक्ष का द्वार है।

श्वास और चेतना: प्राण से ब्रह्म तक का सेतु

योग और वेदांत विरोधी नहीं, बल्कि पूरक हैं। हमारी चर्चाओं में हमने अक्सर देखा है कि कैसे श्वास (Breath) स्थूल शरीर और सूक्ष्म चेतना के बीच का सेतु है। जब हम 'सोहम' (वह मैं हूँ) का जाप करते हैं या अपनी श्वास को साक्षी भाव से देखते हैं, तो हम मन की चंचलता को शांत करते हैं।

शांत मन ही वह स्वच्छ दर्पण है जिसमें आत्मा का प्रतिबिंब स्पष्ट दिखाई देता है। विक्षुब्ध जल में आप अपना चेहरा नहीं देख सकते; वैसे ही, विचारों के कोलाहल में आप आत्म-स्वरूप को नहीं पहचान सकते। इसलिए, ज्ञान मार्ग में भी एक शांत और एकाग्र मन की आवश्यकता होती है, जिसे वेदांत में 'शम-दम' (मन और इंद्रियों का संयम) कहा गया है।

'तत्त्वमसि': तुम वही हो

अद्वैत का अंतिम लक्ष्य कोई नई उपलब्धि हासिल करना नहीं है, बल्कि जो आप पहले से हैं, उसे याद करना है—स्मृति लब्धा (स्मृति प्राप्त हो गई)। छंदोग्य उपनिषद् का महावाक्य "तत्त्वमसि" (तत-त्वम-असि) हमें याद दिलाता है कि जिस अनंत, नित्य, शुद्ध, बुद्ध और मुक्त परमात्मा को हम मंदिरों, मस्जिदों और तीर्थों में खोज रहे हैं, वह हमारे हृदय की गुहा में 'आत्मा' के रूप में सदा विराजमान है।

आप शरीर नहीं हैं, जो जन्मता और मरता है। आप मन नहीं हैं, जो सुख और दुःख का अनुभव करता है। आप वह 'ज्ञाता' (Knower) हैं जो इन सबको जानता है। आप वह स्क्रीन हैं जिस पर जीवन की फिल्म चल रही है; फिल्म में आग लगने से स्क्रीन जलती नहीं है और बाढ़ आने से स्क्रीन भीगती नहीं है। यही आपकी अमरता का प्रमाण है।

निष्कर्ष: जागृत अवस्था की ओर

अंत में, यह समझना आवश्यक है कि अद्वैत केवल पुस्तकीय ज्ञान नहीं है; यह जीने की एक कला है। जब आप इस दृष्टि (Vision of Oneness) के साथ जीते हैं कि सब कुछ एक ही चेतना का विस्तार है, तो घृणा, ईर्ष्या और

भय के लिए कोई स्थान नहीं बचता। आप किससे घृणा करेंगे? दूसरा कोई है ही नहीं।

आत्म-साक्षात्कार की इस यात्रा में, गुरु केवल मार्ग दिखा सकता है, चलना आपको स्वयं होगा। अपनी 'मैं' की संकीर्ण सीमाओं को तोड़कर विराट अस्तित्व में विलीन हो जाना ही जीवन का परम लक्ष्य है। जैसा कि हम अक्सर निर्वाण धाम में चर्चा करते हैं—मोक्ष कहीं जाने का नाम नहीं, बल्कि अपने ही घर (स्वरूप) में वापस लौटने का नाम है।

उठें, जागें, और इस अद्वैत के शंखनाद को सुनें जो आपके भीतर अनवरत गूंज रहा है।

॥ हरि ओम तत्सत ॥

लघु कथा घड़े का आकाश

एक शिष्य ने गुरु से पूछा,

“गुरुदेव, क्या आत्मा सचमुच ब्रह्म से अलग नहीं है? मुझे तो हर जगह भेद ही दिखाई देता है।”

गुरु ने पास रखे मिट्टी के घड़े की ओर इशारा किया और पूछा,

“बताओ, इस घड़े के अंदर जो आकाश है, क्या वह बाहर के आकाश से अलग है?”

शिष्य ने घड़े को ध्यान से देखा और बोला,

“दिखता तो अलग ही है गुरुदेव, जैसे यह घड़ा उसे सीमित कर रहा हो।”

गुरु मुस्कराए और घड़ा ज़मीन पर गिराकर तोड़ दिया।

कुछ क्षण बाद उन्होंने पूछा,

“अब बताओ, अंदर का आकाश कहाँ गया?”

शिष्य कुछ देर मौन रहा। फिर बोला,

“गुरुदेव, वह कहीं गया नहीं... वह तो हमेशा से उसी आकाश का भाग था।”

गुरु बोले — “घड़ा टूटा है, आकाश नहीं।

इसी तरह जब अहंकार टूटता है, तब ज्ञात होता है कि कभी कोई भेद था ही नहीं।

जिसे तुम 'मैं' समझते थे, वह केवल एक घड़ा था—

और उसके टूटते ही वही अनंत प्रकट हो जाता है।

भवसागर

अज्ञेय



आज का विषय है भवसागर।

भवसागर अर्थात अनंत भावनाओं का सागर।

भावना का सबसे बड़ा नुकसान होता है कि वह स्वयं को भुलाने का कार्य करती है।

यह ऐसा मकड़ी का जाल बुनती है जिससे निकलना बहुत कठिन है।

यह रस्सी का वह बिखरा हुआ रूप है जिसका कोई ओर-छोर नहीं है।

जिस प्रकार बारिश की पहली बूंद से ताल-तलैया, नदी-नाले और अब सागर तक स्थित हैं, जो समाप्त होने में बहुत समय लगेगा, जिसमें अनंत बूंदें एक हो गई हैं;

इसी प्रकार एक 'अहं' वृत्ति से अनंत वृत्तियां प्रकट होती रहीं।

(और हो भी क्यों न क्योंकि वह पूर्ण है)

अब आगे चलते हैं।

इसी नाद वृत्ति के कारण इच्छाएं हैं,

और इच्छाओं की पूर्ति भी नाद वृत्ति है।

वृत्ति से वृत्ति में बढ़ोत्तरी होती है।

और इन अनंत नाद वृत्ति से अनंत रचनाएं व्यक्त होती रहती हैं। और इन अनंत व्यक्तित्वों को भव या भवसागर कहा गया है।

भावना को देखें कैसे बंधनों की स्वामी है।

जैसे मैं एक व्यक्ति हुआ।

इसके माँ, बाप, भाई, बहन, पति, पत्नी, सास, ससुर, साला, साली, देवर, ननद, बेटी, बेटा, पोता, पोती, नाती, नातिन आदि-आदि... यह बंधन रुकने वाला नहीं है।

अब और देखें—पड़ोसी, गली-मोहल्ले, जात-बिरादरी, अपने-पराए, सगे-संबंधी, मित्र-शत्रु आदि-आदि।

मेरे गाँव के, मेरे जिले के, मेरे राज्य के, मेरे देश के हैं

ये लोग, ये वस्तुएं।

तो भावनाओं का सागर आपको आप में स्थित नहीं रहने देता।

भावना यहाँ तक पीछा करती है कि आप स्वयं ही कुछ गुनगुना रहे हों और आपको इसका ज्ञान न हो, आदतन।

भोजन ग्रहण करें और पता नहीं चला कि ग्रहण कर लिया; अगर आप होश में होंगे तो आहिस्ता-आहिस्ता आनंद ले-लेकर और चबा-चबाकर खाएंगे।

इससे आपकी आंतों को पचाने में सहायता मिलेगी।

और अगर बिना ध्यान के खाएंगे तो जल्दी से बिना पूरी तरह चबाए; अब आंतों को ज्यादा काम करने होंगे।

और वह शरीर को स्वस्थ करने का समय भी नहीं निकाल पाएगी।

और जो स्वयं में स्थित है वह हर कार्य में कुशलता का फल और कृपा की अनुभूति करता है।

इसका एक ही कारण है कि वह कुछ करता नहीं।

बस होता हुआ देखता रहता है।

साक्षी होकर।

और साक्षी ही शिव है, वह ही आपका स्वरूप है, शिवोऽहम्, शिवोऽहम्।

यह ही भवसागर से पार होना है।

सभी बंधनों से मुक्ति, सभी भावनाओं से मुक्त, मेरा स्वरूप शिवोऽहम् है;

यह कहने और बताने से भी मुक्त।

आज यहाँ पर समापन करते हैं।



शिव तत्त्व: शिव कौन है?

मुक्ति



“देवी कहूँ या शक्ति, या दोनों एक साथ—दोनों एक ही हैं। उसका तत्त्व शिव है, शिव की ही मिट्टी से बनी है, शिव ही बनाती है। शिव के अतिरिक्त ओर कुछ भी नहीं और यह भी सत्य है कि ‘मैं शिव हूँ’—यह कहना भी शक्ति की प्रसन्नता और कृपा पर ही निर्भर है।”

ये शब्द किसी सिद्धांत का निष्कर्ष नहीं, बल्कि उस स्थिति के संकेत हैं जहाँ जानने की समस्त प्रक्रियाएँ अपनी सीमा पर पहुँचकर स्वयं को निरस्त कर देती हैं। जहाँ भाषा ठहर जाती है और मौन ही अंतिम माध्यम रह जाता है।

शिव — अनुभवातीत आयाम

शिव को ‘अनुभव’ कहना एक सूक्ष्म त्रुटि है, क्योंकि अनुभव सदैव द्वैत में घटित होता है—जहाँ एक अनुभवकर्ता और एक विषय होता है।

शिव न ज्ञाता हैं, न ज्ञेय;

वे वह आयाम हैं जिसमें ज्ञाता और ज्ञेय दोनों प्रकट होते हैं।

यदि पूछा जाए कि सृष्टि का प्राकट्य क्यों हुआ,

तो इसका कोई कारण नहीं दिया जा सकता।

शक्ति कोई उत्पत्ति नहीं,

बल्कि वही प्राकट्य है—जो सदा से है।

यह न आरम्भ है, न परिणाम—

यह बस है, और ऐसा ही है।

“शिव की मिट्टी” — जगत का अर्थ

जगत शिव से अलग नहीं,

बल्कि उसी का प्रकट रूप है।

जैसे मिट्टी और घड़ा—

रूप भिन्न, तत्त्व एक।

तभी प्रश्न उठता है—

यदि सब शिव है, तो पीड़ा और अधर्म का आधार क्या है?

पीड़ा और अधर्म कोई अलग वास्तविकता नहीं,

बल्कि उसी एक में भेद की दृष्टि से प्रकट रूप हैं।

जहाँ विभाजन दिखता है,

वहीं शुभ-अशुभ का भेद खड़ा होता है।

अधोर वही है—

जहाँ यह भेद रह ही नहीं जाता।

शक्ति — प्राकट्य और आत्मबोध

शिव शुद्ध चैतन्य हैं—स्वयं प्रकाशित; उन्हें जाना नहीं जा सकता, क्योंकि जानना सदैव द्वैत में होता है।

जब वही चैतन्य अपने ही प्रकाश में प्रकट होता है,

वहीं से शिव के प्रतिबिंब के रूप में शक्ति का उद्भव दिखता है।

“मैं शिव हूँ”—यह कोई नया ज्ञान नहीं,

बल्कि भूल के हटने का संकेत है।

शिव के रूप — कालानुसार प्राकट्य

शिव के अनेक रूप—सदाशिव, रुद्र, भैरव, नटराज—

ये भिन्न अस्तित्व नहीं,

बल्कि विभिन्न कालखंडों और आवश्यकताओं के अनुसार

एक ही तत्त्व के भिन्न प्राकट्य हैं।

कभी संतुलन के लिए,

कभी संहार के लिए,

कभी साधना के मार्गदर्शन के लिए—

इसी क्रम में अनंत कथाओं का उद्भव हुआ।

उन कथाओं में कहीं शिव ही हरि के रूप में प्रकट हुए,

तो कहीं भेद पूर्णतः विलीन हो गया।

इस प्रकार—

शिव अनंत हैं, और शिव की कथाएँ भी अनंत हैं—

यह विविधता भिन्नता नहीं, बल्कि एक ही तत्त्व की बहुआयामी अभिव्यक्तियाँ हैं।

प्रतीक — एक गहन संकेत

शमशान — जहाँ सम्पूर्ण विनाश घटित हो जाता है, वहीं शिव हैं; जहाँ कुछ भी शेष नहीं, वही उनका आधार है।

भस्म — यह अलंकरण नहीं;

यह उस सत्य का संकेत है कि जो भी प्रकट है, वह भीतर ज्ञानाग्नि में निरंतर भस्म हो रहा है। वही भस्म स्वाभाविक रूप से बाहर प्रकट होती है— मानो शिव ने उसे धारण किया हो, पर वास्तव में वह भीतर के दाह का ही प्रकट रूप है।

तीसरी आँख — यह कोई अलग नेत्र नहीं; यह वही दृष्टि है जिसमें जो भी 'मुझसे अलग' प्रतीत होता है, वह अपने आप अप्रासंगिक होता चला जाता है। यह दाह किसी वस्तु के नष्ट होने का संकेत नहीं, बल्कि इस बोध का है कि जो दिख रहा है, वह वास्तव में 'मैं' नहीं है—

और इसी समझ में उसका प्रभाव समाप्त हो जाता है।

काली और शिव — गति और आधार

काली गति है, प्रचंड ऊर्जा है।

शिव आधार हैं, मौन हैं।

जब गति अपनी पराकाष्ठा में होती है,

तो वह सब कुछ नष्ट कर सकती है।

पर यदि आधार ही न रहे—

तो गति भी समाप्त हो जाएगी।

इसी बोध में—

शिव काली के चरणों में स्थित हो जाते हैं।

और जैसे ही काली का पग शिव पर पड़ता है,

एक गहन बोध प्रकट होता है—

जिसे वह नष्ट कर रही है,

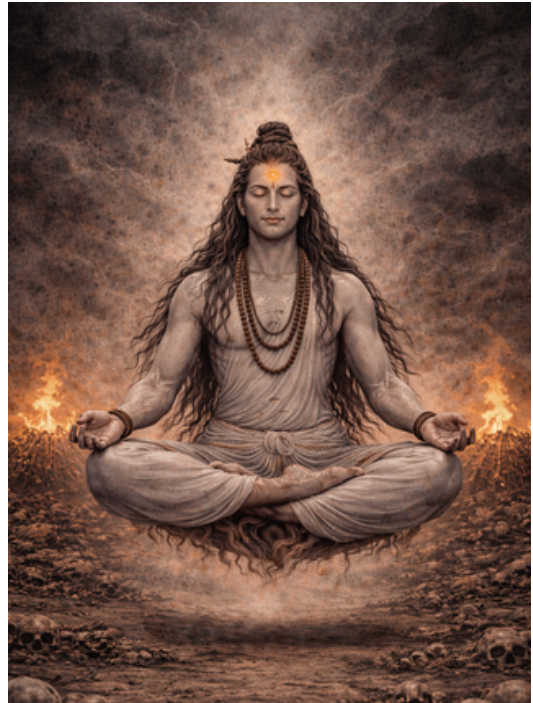
उसी में उसका अस्तित्व भी आश्रित है।

आधार का नाश संभव नहीं;

उसे हटाया जाए तो स्वयं गति भी विलीन हो जाएगी।

काली की जिह्वा का प्रकट होना, उसी क्षण का संकेत है—

जहाँ गति पहली बार अपने आधार को पहचानती है।



यह समर्पण है—

जहाँ आधार स्वयं को गति के हवाले कर देता है, और गति अपने स्रोत को पहचानकर स्थिर हो जाती है।

विस्मरण और स्मरण

चेतना स्वयं को विस्मृत कर सकती है—

और वही विस्मरण जीव की अवस्था है।

स्मरण ही जागरण है।

नाथ परंपरा में एक प्रसंग आता है—

जब मत्स्येंद्रनाथ मोह में लीन हो गए,

तब गोरखनाथ ने पुकारा—

“जाग मच्छिंद्र, गोरख आया।”

यह केवल पुकार नहीं थी,

बल्कि चेतना को उसके मूल में लौटाने का आह्वान था।

यहाँ भी वही घटित हो रहा है—

शिव ही शिव को भूल गया, और शिव ही शिव को जगा रहा है।

“जागो”—

यह आह्वान बाहर का नहीं,

भीतर की उसी विस्मृत चेतना के लिए है।

पार्वती — साधना और महाशिवरात्रि का मिलन

शिव और पार्वती का विवाह केवल एक घटना नहीं,

बल्कि साधना की परिपक्वता का प्रतीक है।
 सती के पश्चात शक्ति पुनः प्रकट होती है—
 पर यह प्राकट्य एक ही बार में नहीं,
 बल्कि अनेक जन्मों की साधना के क्रम से परिपक्व होता है;
 उसी क्रम में सती और फिर पार्वती।
 इस बार केवल भाव नहीं,
 तप, धैर्य और मार्गदर्शन की पूर्णता है।
 महाशिवरात्रि उसी मिलन की स्मृति है—
 जहाँ शक्ति अपने समग्र परिष्कार के पश्चात
 अपने मूल में स्थित होती है।
 यह मिलन दो का नहीं,
 शिव-चैतन्य और उसके प्राकट्य का अद्वैत है।

महाकाल — समय का मूल स्रोत

शिव को 'महाकाल' कहा गया है—
 पर यह केवल समय के स्वामी होने का संकेत नहीं है।
 हम समय को सीमित रूप में समझते हैं—
 पृथ्वी की गणना, युगों और वर्षों के आधार पर।
 पर यदि सृष्टि अनेक लोकों में विस्तृत है, तो प्रत्येक लोक की
 अपनी-अपनी काल-गणना होगी।
 जहाँ अनेक लोक हैं,
 वहाँ अनंत प्रकार के काल भी होंगे।
 अब प्रश्न यह है—
 इन सभी कालों का आधार क्या है?
 वह क्या है, जिससे प्रत्येक प्रकार का समय उत्पन्न होता है?
 उसी मूल को 'महाकाल' कहा गया है।
 अतः—
 सभी काल शिव से उत्पन्न होते हैं।
 वे समय के भीतर नहीं,
 समय उनसे प्रकट होता है।

विज्ञान और शून्यता — आधुनिक संकेत

जब विज्ञान पदार्थ को सूक्ष्मतरंग स्तर पर देखता है,
 तो ठोस वस्तु नहीं, बल्कि ऊर्जा और संभावना मिलती है।
 डबल-स्लिट प्रयोग यह दिखाता है कि—
 जब प्रकाश का अवलोकन नहीं किया जाता,
 तो वह तरंग के रूप में व्यवहार करता है—
 अर्थात् अनेक संभावनाओं का एक साथ अस्तित्व।
 तरंगें मिलकर निरंतर नए पैटर्न बनाती रहती हैं—
 एक अनवरत विस्तार।
 पर जैसे ही अवलोकन किया जाता है,

दृष्टांत

एक शिष्य ने गुरु से पूछा—
 “मैं शिव से मिलना चाहता हूँ।”
 गुरु ने कहा—
 “जाकर उसे खोजो जिसका सिर न हो।
 जिसका सिर नहीं होगा, वही शिव है।”
 शिष्य निकल पड़ा।
 नगर-नगर भटका—हर किसी का सिर था।
 समय बीत गया।
 वह लौटा—
 “मुझे ऐसा कोई नहीं मिला।”
 गुरु ने शांत स्वर में पूछा—
 “क्या तुमने अपना सिर देखा है?”
 क्षण भर के लिए सब थम गया।
 शिष्य पहली बार भीतर मुड़ा—
 उसका 'मैं' विलीन हो गया, और सिर के साथ-साथ
 संसार भी ओझल हो गया।
 उस परम मौन में शिष्य ने स्वयं को शिव रूप में पाया।
 खोज समाप्त हुई—बोध हुआ कि खोजी और खोज,
 दोनों सदा से शिव ही थे।

वही प्रकाश कण की तरह व्यवहार करता है—
 मानो अनंत संभावना एक निश्चित रूप में प्रकट हो गई हो।
 यह संकेत देता है कि
 जो निश्चित दिखाई देता है,
 वह एक गहरे, परिवर्तनशील क्षेत्र की
 क्षणिक अभिव्यक्ति मात्र है।

निष्कर्ष

शिव को जाना नहीं जा सकता, क्योंकि जानने के लिए 'दो'
 का होना अनिवार्य है। शिव कोई विषय नहीं, वह स्वयं ज्ञाता
 है।
 जब जानने की समस्त चेष्टाएँ और 'मैं' का अहंकार शांत हो
 जाता है, तब जो शेष रहता है—वही शिव है। यहाँ शिव और
 शक्ति का भेद भी विलीन हो जाता है; जो प्रकट है वह शक्ति
 है और जो उसका आधार है, वही शिव।
 शब्दों के पार, वह केवल एक अनुभव है—जिसे न देखा जा
 सकता है, न पाया जा सकता है, क्योंकि शिव को प्राप्त नहीं
 किया जाता, केवल 'शिव' हुआ जा सकता है।

मैं क्या है?

सत्याकाश

नमस्ते! बोधि मित्र में आप सभी का स्वागत है।

आज हम चर्चा करेंगे कि यह 'मैं' क्या है। वैसे तो दो प्रकार के 'मैं' माने गए हैं।

एक वह जो मिथ्या 'मैं' है, जिससे सभी परिचित हैं, जिसके बारे में सब जानते हैं। और जो दूसरा 'मैं' है, उसके बारे में किसी को कुछ नहीं पता, और उसके विषय में कोई कुछ जान भी नहीं सकता।

जिस 'मैं' के बारे में सबको पता है, वह झूठ है, एक प्रकार का भ्रम है। किंतु बड़े आश्चर्य की बात है कि हमने उसी को सत्य मान लिया है। और जो सत्य 'मैं' है, उसके बारे में हमें कोई खबर नहीं; हम उसके विषय में कुछ जानते ही नहीं।

मिथ्या 'मैं' का स्वरूप

यह जो मिथ्या 'मैं' है, वह एक संस्था है, जो अनेक बातों से मिलकर बनी है। इसका आधार सदा दूसरों पर खड़ा है; यह बाहर की ओर आरोपित है। और यह बना है—संबंधों और परिवारों से, धन और संपत्ति से, रिश्ते-नाते, पद, जाति और धर्म से, रंग, शरीर और शरीर के अंगों से, राष्ट्र, समय, वाणी और संस्कारों से, संस्कृति और वेशभूषा से, भावनाओं, इच्छाओं, बुद्धि, नियम और विचारों से, स्मृति और लिंग से। यह अपनी पहचान इन्हीं सब से बनाता है। इसकी दौड़ सदा बाहर की ओर है और यह अपने आप में कुछ भी नहीं है। यह अकेला जीवित नहीं रह सकता।

शून्य स्वरूप की खोज

एक आश्चर्यजनक बात यह है कि यह जो 'मैं-मैं' करता है, यदि हम इसे खोजने निकलें, तो यह अकेला कहीं नहीं मिलता; यह सदैव समूह में ही मिलता है। जिन बातों को हमने गिनाया है, वे सब इसके आधार हैं। यदि हम इन आधारों को परत-दर-परत हटाते जाएँ, तो अंततः यह स्वयं ही विलीन हो जाता है और अपने शून्य स्वरूप में ठहर जाता है।

यहाँ 'नष्ट हो जाने' का अर्थ यह नहीं कि यह कहीं चला जाएगा या इसमें आग लग जाएगी। यहाँ नष्ट होने का अर्थ है — इसकी मिथ्यता को जान लेना; उसे जैसा है, वैसा देख लेना।

सत्य 'मैं' का प्रकाश

जब इसकी मिथ्यता ज्ञात हो जाती है, तब वह सूर्यरूपी



'मैं' स्व-प्रकाशित हो उठता है। वह अपने आप प्रकट होता है; उसके लिए कुछ करना नहीं पड़ता।

यह ऐसा है जैसे किसी तालाब के गर्भ में हीरे-जवाहरात छिपे हों, परंतु पानी मटमैला होने के कारण कुछ दिखाई न देता हो। जब हम तालाब का पानी साफ करना आरंभ करते हैं, तो भीतर का खजाना दृष्टिगोचर होने लगता है। इसी प्रकार, यदि कोई 'हीरा' पाना चाहता है, तो उसे 'मैं' रूपी मटमैले पानी को बाहर निकालकर रिक्त होना होगा। तभी वह प्रकट होगा।

निष्कर्ष

जब इस 'मैं' का नाश होना प्रारंभ होता है, तो सूर्य की किरणें धीरे-धीरे उतरती प्रतीत होती हैं। यद्यपि यह कहना भी पूर्णतः उचित नहीं; वह तो सदैव अवतरित है, स्व-प्रकाशित है। केवल 'मैं' नाम की मिट्टी उस पर जमी हुई है।

यदि चित्त की खिड़की पर जमी धूल को हम झाड़ना प्रारंभ करें, तो चेतना का प्रकाश भीतर आने लगता है। करना कुछ भी नहीं है— केवल मिट्टी हटानी है, कीचड़ हटाना है, धूल झाड़नी है। कार्य छोटा-सा है, पर अत्यंत कठिन।

और जब 'मैं' नाम की संपूर्ण संस्था विलीन हो जाती है, तब केवल शुद्ध 'मैं' शेष रहता है। उसे कहा नहीं जा सकता; उसे कहने का कोई उपाय नहीं। वह तो केवल 'हुआ' जा सकता है।

पर्दा हटते ही सूर्य प्रकाशित हो उठता है।

यही हम सबका स्वभाव है।

यही आप हैं, यही मैं हूँ, और यही आनंद है।

धर्म और अध्यात्म : आचरण से जागरण

स्वलीन



जब शब्द एक हो जाएँ, पर अर्थ खो जाए

हम ऐसे समय में जी रहे हैं जहाँ “धर्म” और “अध्यात्म” शब्द अत्यंत प्रचलित हैं, परंतु उनका वास्तविक अर्थ धुंधला हो चुका है। कोई व्यक्ति मंदिर जाता है, व्रत रखता है, तीर्थयात्रा करता है, विशेष वेशभूषा धारण करता है या किसी परंपरा का पालन करता है — तो समाज सहज ही उसे “आध्यात्मिक” घोषित कर देता है। धार्मिक होना ही आध्यात्मिक होने का पर्याय मान लिया गया है।

परंतु क्या सचमुच धर्म ही अध्यात्म है? क्या बाह्य आचरण ही आंतरिक जागरण है? क्या कर्मकांड ही आत्मबोध है?

यह प्रश्न केवल दार्शनिक जिज्ञासा नहीं है; यह जीवन की दिशा का प्रश्न है। यदि हम धर्म को ही अध्यात्म मान लें, तो हम बाहरी आडंबर में उलझ सकते हैं। यदि हम अध्यात्म को समझे बिना धर्म को छोड़ दें, तो हम आधारहीन हो सकते हैं। अतः दोनों के संबंध को समझना अनिवार्य है।

धर्म का स्वरूप : धारण करने वाली शक्ति

“धर्म” शब्द संस्कृत की धृ धातु से बना है, जिसका अर्थ है — धारण करना। जो इस जगत, समाज और जीवन-व्यवस्था को धारण करे, वही धर्म है। महाभारत में भीष्म पितामह युधिष्ठिर को धर्म का उपदेश देते हुए कहते हैं—

धारणाद् धर्म इत्याहुः धर्मो धारयति प्रजाः।

यः स्याद्धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः॥

अर्थात् जो प्रजा को धारण करे, जो जीवन और समाज को स्थिरता दे, वही धर्म है।

अब प्रश्न उठता है कि फिर कोई व्यक्ति धार्मिक कैसे हो सकता है ?

यदि धर्म वह सिद्धांत है जो समस्त समाज, जीवन और व्यवस्था को धारण करता है, तो वह किसी एक व्यक्ति की संपत्ति नहीं, बल्कि एक सार्वभौमिक नियम है। धर्म सत्य, न्याय, करुणा, संतुलन और मर्यादा के रूप में जीवन को स्थिर रखता है। शास्त्र कहते हैं — “धर्मो रक्षति रक्षितः”, अर्थात् जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है।

इस दृष्टि से धर्म कोई संप्रदाय या बाहरी पहचान नहीं, बल्कि वह आधार है जिस पर सभ्यता टिकी रहती है। जैसे प्रकृति के नियम सबको धारण करते हैं, वैसे ही धर्म जीवन के नैतिक और सामाजिक संतुलन को धारण करता है। अतः धर्म एक व्यापक व्यवस्था है, जो व्यक्ति से भी बड़ी है और समाज से भी बड़ी; वह जीवन का आंतरिक संतुलन और बाह्य संरचना दोनों है।

ऐसी स्थिति में व्यक्ति “धार्मिक” तब कहलाता है जब वह स्वयं को इस सार्वभौमिक व्यवस्था के अनुरूप ढाल लेता है। धार्मिक होना धर्म को बनाना नहीं, बल्कि उसे अपने आचरण में जीवित रखना है। जो व्यक्ति सत्य को प्राथमिकता देता है, अपने कर्तव्यों का पालन करता है, स्वार्थ से ऊपर उठकर व्यापक हित को देखता है और अंतःकरण की शुद्धता बनाए रखता है, वही वास्तव में धार्मिक है। बाहरी कर्मकांड या वेशभूषा धार्मिकता का प्रमाण नहीं; धार्मिकता का मापदंड है — अंतर्मन की सजगता और जीवन का संतुलन।

जब व्यक्ति धर्म के अनुरूप जीता है, तब वह उस धारण करने वाली शक्ति का माध्यम बन जाता है। और जब यही धार्मिकता अंततः आत्मचिंतन और साक्षीभाव में परिवर्तित हो जाती है, तब वही अध्यात्म का द्वार खोल देती है।

इस दृष्टि से धर्म केवल पूजा-पाठ नहीं है।

धर्म है —

- सत्य का पालन
- कर्तव्य का निर्वाह
- समाज के प्रति उत्तरदायित्व
- मर्यादा का संरक्षण
- न्याय और करुणा का संतुलन

धर्म वह आधार है जिस पर सभ्यता खड़ी रहती है। यदि धर्म न हो तो समाज अराजकता में डूब जाए। धर्म मनुष्य को अनुशासन देता है। वह कहता है — ऐसा करो, ऐसा न करो। वह जीवन को दिशा देता है, सीमाएँ निर्धारित करता है, आचरण को संतुलित करता है। परंतु धर्म का कार्य मुख्यतः बाह्य व्यवस्था तक सीमित है। वह जीवन को संभालता है, परंतु जीवन के अंतिम रहस्य का उद्घाटन नहीं करता। वह पथ का निर्माण करता है, परंतु मंजिल का अनुभव नहीं देता।

अध्यात्म का सार : स्वयं को जानने की यात्रा

अध्यात्म शब्द “अधि + आत्मा” से बना है — अर्थात् आत्मा के विषय में चिंतन, आत्मा का अनुभव, आत्मा में स्थित होना। अध्यात्म का मूल प्रश्न है — “मैं कौन हूँ?” क्या मैं केवल यह शरीर हूँ जो जन्म लेता है और मृत्यु को प्राप्त होता है? क्या मैं मन हूँ जो विचारों और भावनाओं से भरा है? क्या मैं स्मृतियों का समूह हूँ? या इन सबके पीछे कोई साक्षी चेतना है जो सबको देख रही है? अध्यात्म उस साक्षी को पहचानने की प्रक्रिया है।

उपनिषदों की यह प्रार्थना अध्यात्म की दिशा को अत्यंत सुंदर रूप में व्यक्त करती है—

असतो मा सद्गमय।

तमसो मा ज्योतिर्गमय।

मृत्योर्माऽमृतं गमय॥

असत्य से सत्य की ओर, अज्ञान से ज्ञान की ओर, मृत्यु से अमरत्व की ओर बढ़ना ही अध्यात्म है। अध्यात्म केवल विचार नहीं, अनुभव है। केवल पढ़ लेने से, सुन लेने से या शास्त्रों का उद्धरण देने से कोई आध्यात्मिक नहीं हो जाता। अंतर्मन की सजगता और जीवन का संतुलन। जब व्यक्ति

धर्म के अनुरूप जीता है, तब वह उस धारण करने वाली शक्ति का माध्यम बन जाता है। और जब यही धार्मिकता अंततः आत्मचिंतन और साक्षीभाव में परिवर्तित हो जाती है, तब वही अध्यात्म का द्वार खोल देती है।

इस दृष्टि से धर्म केवल पूजा-पाठ नहीं है।

धर्म है —

- सत्य का पालन
- कर्तव्य का निर्वाह
- समाज के प्रति उत्तरदायित्व
- मर्यादा का संरक्षण जब ज्ञान जीवन को परिवर्तित कर दे, जब चेतना में स्थिरता और साक्षीभाव स्थापित हो जाए, तब अध्यात्म फलित होता है।

धर्म और अध्यात्म का संबंध : आधार और शिखर

धर्म और अध्यात्म विरोधी नहीं हैं; वे पूरक हैं। धर्म आधार है, अध्यात्म शिखर। धर्म अनुशासन है, अध्यात्म अनुभूति। धर्म समाज के लिए है, अध्यात्म आत्मा के लिए। यदि धर्म व्यक्ति को भीतर की ओर ले जाए, तो वह अध्यात्म का द्वार बन जाता है। यदि धर्म केवल बाहरी कर्मकांड बनकर रह जाए, तो वह आवरण बन जाता है।

धर्म कहता है — सत्य बोलो। अध्यात्म पूछता है — बोलने वाला कौन है?

धर्म कहता है — लोभ मत करो। अध्यात्म पूछता है — लोभ किसे होता है?

धर्म मनुष्य को सजग करता है; अध्यात्म उसे जागृत करता है।

आध्यात्मिक प्रगति का वास्तविक अर्थ

आध्यात्मिक होना किसी बाहरी पहचान, वेशभूषा या कर्मकांड का परिणाम नहीं है; यह चेतना की परिपक्व अवस्था है। आध्यात्मिकता तब आरम्भ होती है जब मनुष्य जीवन को केवल जीने का माध्यम न मानकर उसे समझने का प्रयास करता है और गंभीरता से यह प्रश्न उठाता है — “मैं कौन हूँ?” जब वह देखना प्रारम्भ करता है कि शरीर बदल रहा है, विचार आते-जाते हैं, भावनाएँ उठती-बैठती हैं, परंतु इनके पीछे एक साक्षी चेतना है जो सबको देख रही है, तब उसके भीतर आध्यात्मिक यात्रा का बीज अंकुरित होता है। जब व्यक्ति सुख-दुख, मान-अपमान और लाभ-हानि में संतुलित रहना सीखता है, तब उसकी आध्यात्मिकता विचार नहीं, अनुभव बनने लगती है।

आध्यात्मिक व्यक्ति संसार से भागता नहीं, बल्कि संसार के मध्य रहते हुए भी भीतर से स्वतंत्र होता है।

उसके जीवन में विनम्रता, करुणा, सजगता और स्थिरता स्वतः प्रकट होती है। वह प्रतिक्रियाशील कम और साक्षी अधिक होता है; उसका आनंद बाहरी परिस्थितियों पर निर्भर नहीं रहता। आध्यात्मिकता का सार कुछ नया प्राप्त करना नहीं, बल्कि अहंकार, अज्ञान और मिथ्या पहचानों का क्षय करना है। जब 'मैं' की सीमित धारणा ढीली पड़ती है और व्यक्ति अपने वास्तविक स्वरूप — शुद्ध चेतना — में स्थापित होने लगता है, तब वही अवस्था आध्यात्मिकता है। इस प्रकार आध्यात्मिक होना संभव है, क्योंकि यह कोई बाहरी उपलब्धि नहीं, बल्कि हमारे ही स्वभाव का अनावरण है।

बहुत से लोग अध्यात्म को चमत्कारों, विशेष अनुभवों या सिद्धियों से जोड़ देते हैं, परंतु वास्तविक आध्यात्मिक प्रगति इनसे नहीं मापी जाती। भगवद्गीता में कहा गया है— 'समत्वं योग उच्यते'। समभाव ही योग है।

आध्यात्मिक प्रगति का अर्थ है — सुख-दुख में संतुलन। लाभ-हानि में समत्व। जीवन-मृत्यु के भय का धीरे-धीरे क्षय। जब व्यक्ति भीतर से स्वतंत्र होने लगता है, जब परिस्थितियाँ उसे उतना प्रभावित नहीं करतीं, जब उसका आनंद बाहरी वस्तुओं पर निर्भर नहीं रहता — तब प्रगति हो रही है। सच्ची प्रगति में विनम्रता आती है, सरलता आती है, और अहंकार ढीला पड़ने लगता है।

अध्यात्म क्या नहीं है

स्पष्ट समझ के लिए यह जानना भी आवश्यक है कि अध्यात्म क्या नहीं है। अध्यात्म इच्छाओं की पूर्ति का साधन नहीं है। यह वासनाओं के अंत का मार्ग है। अध्यात्म सिद्धियों की लालसा नहीं है। अध्यात्म बाहरी वेशभूषा नहीं है। अध्यात्म संप्रदाय से अंधा जुड़ाव नहीं है। अध्यात्म संसार से पलायन नहीं है।

संन्यास ज्ञान का परिणाम है, प्रारंभ नहीं। इच्छाओं का दमन लक्ष्य नहीं; उनके मिथ्यात्व की समझ ही वास्तविक मुक्ति है। सच्चा अध्यात्म व्यक्ति को जीवन से दूर नहीं ले जाता, बल्कि जीवन के केंद्र में स्थापित करता है।

आध्यात्मिक जीवनशैली : व्यवहारिक दृष्टिकोण

अध्यात्म का अर्थ है — सजग होकर जीना।

सीखता है, तब उसकी आध्यात्मिकता विचार नहीं,

जब हम सभी अनुभवों में पूर्ण जागरूक हों, जब हम क्रोध आते हुए देख सकें, जब हम अपने विचारों के साक्षी बन सकें — तब जाने अध्यात्म जीवन में उतरा है। प्रत्येक दिन कुछ क्षण आत्मपरीक्षण के हों। प्रत्येक परिस्थिति में समत्व का अभ्यास हो। प्रत्येक संबंध में अहंकार कम और करुणा अधिक हो। यही अध्यात्म की व्यवहारिक साधना है। अध्यात्म में कुछ नया जोड़ना नहीं, बल्कि जो अनावश्यक है उसे हटाना है। जैसे मूर्तिकार पत्थर को काटकर मूर्ति प्रकट करता है, वैसे ही अध्यात्म मिथ्या को हटाकर सत्य को प्रकट करता है।

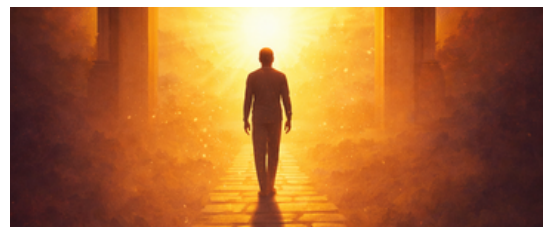
आध्यात्मिक प्रगति का अंतिम लक्ष्य

आध्यात्मिक प्रगति का अंतिम लक्ष्य मुक्ति है — पर यह मुक्ति कहीं बाहर नहीं है। यह अहंकार के विलय में है। जब 'मैं' की सीमित धारणा समाप्त हो जाती है और व्यक्ति समग्रता में स्थापित हो जाता है, तब वह स्वतंत्र हो जाता है। तब जीवन सहज हो जाता है। तब भय समाप्त हो जाता है। तब भीतर का आनंद स्थायी हो जाता है।

बाह्य से आंतरिक की यात्रा

धर्म आवश्यक है, क्योंकि वह जीवन को संतुलन देता है। अध्यात्म अनिवार्य है, क्योंकि वह जीवन को स्वतंत्रता देता है। धर्म बिना अध्यात्म के अधूरा है। अध्यात्म बिना धर्म के आधारहीन हो सकता है। पूर्णता तब है जब बाह्य अनुशासन और आंतरिक जागरण का संतुलन स्थापित हो जाए।

अंततः अध्यात्म का सार यही है— स्वयं को जानना, मिथ्या का क्षय करना और सत्य में स्थित हो जाना। जब यह हो जाता है, तब जीवन साधारण होते हुए भी असाधारण बन जाता है। तब न कुछ पाने की आकांक्षा रहती है, न कुछ खोने का भय। तब केवल एक शांत, निर्मल और मुक्त अस्तित्व शेष रहता है — और वही है सच्चा अध्यात्म।



सहजबोध: निःस्वार्थ सेवा



सहजबोध के सारथी: अशोक जी

ज्ञानमार्ग की विशाल यात्रा में कई ऐसे पड़ाव आते हैं जहाँ एक नए जिज्ञासु को मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। अशोक जी और साथियों द्वारा संचालित टेलीग्राम समूह 'सहजबोध' इसी दिशा में एक निस्वार्थ सेवा का केंद्र बना हुआ है। जैसा कि इस समूह के नाम में ही झलकता है, यहाँ व्यवहार की 'बोध युक्त सहजता' हर साधक को अपनत्व का अनुभव कराती है।

ज्ञानदीक्षा और अद्वैत चर्चा का केंद्र

'सहजबोध' समूह का मुख्य उद्देश्य ज्ञानमार्ग के 'ज्ञानदीक्षा कार्यक्रम' से संबंधित परीक्षाओं के लिए प्रश्नोत्तरों का अभ्यास कराना है। यहाँ केवल परीक्षा की तैयारी ही नहीं, बल्कि अद्वैत दर्शन पर आधारित चर्चाएँ भी होती हैं—जहाँ 'मैं और तू' के भेद, साक्षी की स्पष्टता और उसी एकत्व में प्रकट होने वाले सहज प्रेम पर सरलता से विचार किया जाता है। यह समूह उन साधकों के लिए एक सहायक मंच है जो अपनी आध्यात्मिक यात्रा को स्पष्टता देना चाहते हैं।

चर्चा की एक झलक

कभी-कभी कोई साधक यह प्रश्न रखता है कि अद्वैत जीवन में कैसे प्रकट होता है। चर्चा में धीरे-धीरे स्पष्ट होता है कि जब 'दूसरा' अलग नहीं दिखता, तो संबंधों में स्वाभाविक परिवर्तन आने लगता है—जहाँ पहले प्रतिक्रिया थी, वहाँ समझ दिखाई देती है। तब यह समझ में आता है कि अद्वैत कोई विचार नहीं, बल्कि वही स्पष्टता है जिसमें भेद कम होते-होते एक ही सत्य शेष रह जाता है—और उसी में सहज अपनापन प्रकट होता है।

मौखिक परीक्षा: चरण 3 से चरण 4 का सेतु

अशोक जी और उनके साथी साधकों की एक महत्वपूर्ण सेवा

उस 'मौखिक परीक्षा' के लिए साधकों को तैयार करना है, जो उन्हें चरण 3 से चरण 4 के महत्वपूर्ण सोपान पर ले जाती है। इस परीक्षा में गुरुदेव श्री तरुण प्रधान जी स्वयं साधक से प्रश्न करते हैं, और उपयुक्त स्पष्टता के आधार पर ही अगले चरण का मार्ग प्रशस्त होता है। अशोक जी इस प्रक्रिया को इतनी सहजता से स्पष्ट करते हैं कि साधक का संकोच समाप्त हो जाता है और वह अपने अनुभवों को सरलता से व्यक्त कर पाता है।

सामूहिक सेवा और समर्पण

इस सेवा में अशोक जी अकेले नहीं हैं; समूह के अन्य सहयोगी साधक भी समान भाव से इसमें सहभागी हैं। प्रतिदिन रात्रि 09:00 से 11:00 बजे तक का समय इस समूह में एक जीवंत संवाद का रूप ले लेता है।

अशोक जी का स्वभाव और भूमिका

अशोक जी पेशे से एक शिक्षक हैं, और उनके स्वभाव में वही सादगी और सरलता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। व्यवहार में कहीं भी अहं का आभास नहीं होता। चर्चाओं के दौरान जब कभी विषय भटकने लगता है, तो वे सहज हस्तक्षेप कर उसे पुनः सार्थक दिशा में ले आते हैं। यह संतुलन—सादगी के साथ स्पष्टता—समूह के वातावरण को स्थिर बनाए रखता है। ऋषि विश्वामित्र के प्रति उनकी श्रद्धा भी उनके स्वभाव में झलकती है—विशेषकर उस अडिगता में, जो मार्ग पर स्थिर रहने में सहायक होती है, जो साधकों के लिए प्रेरक बनती है। वे ऐसे मार्गदर्शक के रूप में प्रकट होते हैं, जिनमें सहजता, स्पष्टता और स्थिरता का संतुलन स्वाभाविक रूप से दिखाई देता है।



महर्षि मुक्त



महर्षि मुक्त : एक अद्भुत यात्रा

कभी-कभी इतिहास के पन्नों में ऐसे व्यक्तित्व उभरते हैं जिनका जीवन किसी ग्रंथ की तरह होता है। उनका प्रत्येक अनुभव, प्रत्येक संघर्ष और प्रत्येक मौन साधकों के लिए एक संकेत बन जाता है। महर्षि मुक्त का जीवन भी ऐसा ही था— एक साधारण मनुष्य से आत्मबोध तक की यात्रा।

एक ग्रामीण बालक

महर्षि मुक्त का जन्म उत्तर प्रदेश के ग्राम झंडापुर में 1 फरवरी 1906 को हुआ। यह ग्राम प्रयागराज (इलाहाबाद) से लगभग 50 किलोमीटर की दूरी पर, प्रतापगढ़ जनपद की कुंडा तहसील के समीप स्थित है। उसका नाम रखा गया रामदिवर। गाँव छोटा था, जीवन साधारण था, और साधन सीमित थे। परंतु उस बालक के भीतर एक विशेष जिज्ञासा थी—जानने की जिज्ञासा।

उनके पिता पंडित रामनंदन पांडेय धार्मिक और परोपकारी व्यक्ति थे। घर में लोगों की सहायता करना, न्यायपूर्ण सलाह देना और पूजा-पाठ में समय बिताना उनकी जीवनशैली का अटूट हिस्सा था।

बाल्यावस्था से ही रामदिवर की बुद्धि तीव्र थी। पाँच वर्ष की आयु में ही अनेक संस्कृत श्लोक उन्हें कंठस्थ थे। वे दूर स्थित पाठशाला तक पैदल जाते और घंटों अध्ययन करते। उन्हें ज्ञान से प्रेम था—पर अभी उन्हें पता नहीं था कि यह प्रेम एक दिन उन्हें आत्मज्ञान की ओर ले जाएगा।

जीवन का कठोर मोड़

सन 1922 में देश में प्लेग महामारी फैल गई। इस महामारी ने रामदिवर के जीवन को गहराई से झकझोर दिया। कुछ ही दिनों के भीतर उनकी माता, छोटे भाई और बहन इस

संसार से विदा हो गए।

सोलह वर्ष की आयु में ही जीवन ने उन्हें कठोर यथार्थ से परिचित करा दिया।

अब उन्हें खेतों में काम करना पड़ता, घर संभालना पड़ता और साथ ही अध्ययन भी करना पड़ता। लेकिन इन कठिन परिस्थितियों के बीच उनके भीतर एक प्रश्न लगातार उठता रहा—

“जीवन क्या है?”

यह प्रश्न धीरे-धीरे उनके भीतर वैराग्य का बीज बन गया।

सत्य की खोज

युवावस्था तक आते-आते रामदिवर के भीतर सत्य को जानने की तीव्र इच्छा जाग उठी। अंततः उन्होंने घर छोड़ दिया और एक साधक के रूप में भारत के विभिन्न तीर्थों और संतों की खोज में निकल पड़े।

उन्होंने अनेक संतों से मिलकर साधना की। शास्त्र पढ़े, तप किया, और जीवन को निकट से देखा।

यह खोज अंततः उन्हें अमरकंटक के घने जंगलों तक ले आई।

अमरकंटक की साधना

अमरकंटक के कपिलधारा क्षेत्र में उन्होंने अत्यंत कठोर साधना की। यह वह समय था जब वे लगभग पूर्ण एकांत में रहते।

अमरकंटक के कपिलधारा क्षेत्र में उन्होंने अत्यंत कठोर साधना की। यह वह समय था जब वे लगभग पूर्ण एकांत में रहते थे। शरीर दुर्बल हो गया था, परंतु भीतर की जिज्ञासा अडिग थी।

इसी गहन साधना के दौरान उन्हें आत्मानुभूति का अनुभव हुआ। वही क्षण उनके जीवन का निर्णायक मोड़ बन गया।

रामदिवर अब केवल एक साधक नहीं रहे—अब वे स्वामी मुक्तानंद और आगे चलकर महर्षि मुक्त के नाम से जाने जाने लगे।

“राम कौन है?” — उनके प्रवचनों का प्रारम्भ

आत्मानुभूति के बाद महर्षि मुक्त लोगों के बीच आए और उन्होंने अपने प्रवचनों की शुरुआत एक अत्यंत सरल किंतु गहन प्रश्न से की—

“राम कौन है?”

दुर्ग और छत्तीसगढ़ के अन्य क्षेत्रों में दिए गए उनके प्रारम्भिक प्रवचनों का मुख्य विषय यही रहा। वे लोगों से कहते—

“तुम शरीर नहीं हो।

तुम मन नहीं हो।

इन सबको जानने वाला जो है, वही तुम्हारा सत्य स्वरूप है।”

वे राम को किसी दूर बैठे देवता के रूप में नहीं, बल्कि आत्मा के रूप में समझाते थे। उनके अनुसार—

“जो सबके भीतर से ‘मैं हूँ’ कहता है, वही राम है।”

इस प्रकार “राम कौन है?” का प्रश्न उनके अध्यात्म का प्रवेशद्वार बन गया।

साधना से सेवा तक

आत्मानुभूति के बाद उन्होंने अपने अनुभव को लोगों के साथ साझा करना प्रारंभ किया। वे गाँव-गाँव, नगर-नगर जाते और सरल भाषा में अध्यात्म का संदेश देते।

उनकी वाणी में अद्भुत सरलता थी। हजारों लोग उनके सत्संगों में आने लगे। विशेष रूप से छत्तीसगढ़ क्षेत्र में उनका प्रभाव व्यापक हुआ। रायपुर, दुर्ग और धमतरी के आसपास उनके प्रवचन लोगों के बीच अत्यंत लोकप्रिय हुए।

सामान्य जीवन की परिस्थितियाँ

महर्षि मुक्त का जीवन केवल आश्रमों तक सीमित नहीं था। वे साधारण लोगों के बीच रहते थे, उनके प्रश्न सुनते थे और जीवन की जटिलताओं के बीच भी सत्य की ओर संकेत करते थे।

वे कहते—

“जो हो रहा है, उसे होने दो।

फिक्र मत करो।

चिंता केवल मन को उलझाती है।”

महर्षि मुक्त के पाँच महासूत्र:

१. इच्छा का त्याग और आत्म-शक्ति: > "इच्छा करते ही मनुष्य अपना बल संसार को दे देता है।"
२. परमात्मा का द्वार: > "अपने 'मैं' को पहचानो, वही परमात्मा का द्वार है।"
३. अद्वैत की पराकाष्ठा: > "मैं से भिन्न कुछ भी नहीं है।"
४. निर्विकल्प स्वरूप: > "मैं ऐसा हूँ, विकल्प है... बस मैं जैसा हूँ।"
५. सत्य की पहचान: > "जो सबके भीतर से 'मैं हूँ' कहता है, वही आत्माराम है, सत्य है।"

मृत्यु का अनुभव

वृद्धावस्था में उनका शरीर अत्यंत दुर्बल हो गया था। उनकी आँखों की दृष्टि भी लगभग समाप्त हो गई थी।

एक बार अस्पताल में चिकित्सकों ने उन्हें मृत घोषित कर दिया। पर कुछ ही समय बाद वे अचानक उठ बैठे और “शिव-शिव” कहते हुए बोले—

“हमने मृत्यु को देखा है।

आत्मा कहीं आती-जाती नहीं है।”

यह घटना उनके शिष्यों के लिए अत्यंत आश्चर्यजनक थी।

अंतिम क्षण

28 दिसंबर 1976 को उनके आसपास उनके निकटजन और शिष्य उपस्थित थे। उनका शरीर अत्यंत दुर्बल हो चुका था।

उसी समय उनके मुख से एक वाक्य प्रकट हुआ—

“मैं चैतन्य जान गया।”

यह उनके जीवन का अंतिम संदेश था।

कुछ समय बाद उनका शरीर शांत हो गया। 30 दिसंबर को हरिद्वार में उनके पार्थिव शरीर को जल समाधि दी गई।

एक ज्योति का विलय

महर्षि मुक्त की लौकिक यात्रा समाप्त हुई, परंतु उनके द्वारा जगाई गई चेतना आज भी साधकों के जीवन में प्रेरणा बनकर जीवित है।

उनका जीवन हमें एक सरल सत्य की ओर संकेत करता है—

जिस सत्य को हम बाहर खोजते हैं, वह कहीं बाहर नहीं है।

वह सत्य स्वयं हम ही हैं।

विनाश का कारण बन सकता है।

10. **गज (हाथी)** मेरा दसवाँ गुरु है।

हाथी कामवासना के कारण शिकारी के जाल में फँस जाता है।

मैंने इससे सीखा कि साधक को इन्द्रिय-विकारों से सावधान रहना चाहिए।

11. **मधुआ** मेरा ग्यारहवाँ गुरु है।

मधुमक्खी शहद इकट्ठा करती है, पर मधुआ उसे ले जाता है।

मैंने इससे सीखा कि जीवन को केवल संग्रह में नहीं, आत्मज्ञान में लगाना चाहिए।

12. **मछली** मेरा बारहवाँ गुरु है।

मछली काँटे में लगे आहार के लालच में फँस जाती है।

मैंने इससे प्रलोभन के परिणाम को समझा।

13. **पिंगला गणिका** मेरी तेरहवीं गुरु है।

उसने विवेक और वैराग्य से सत्य का अनुभव किया।

मैंने उससे वैराग्य की शिक्षा ली।

14. **तीर बनाने वाला** मेरा चौदहवाँ गुरु है।

वह जिस एकाग्रता से तीर बनाता है,

मैंने उससे सीखा कि वैसी ही एकाग्रता से आत्मा को जाना जा सकता है।

15. **अबोध बालक** मेरा पंद्रहवाँ गुरु है।

बालक मान-अपमान, अपना-पराया से परे रहता है।

मैंने उससे सहजता और निष्कपटता सीखी।

16. **चन्द्रमा** मेरा सोलहवाँ गुरु है।

चन्द्रमा सूर्य के प्रकाश को प्रतिबिंबित करता है।

मैंने उससे जाना कि जीवात्मा उसी परमात्मा का प्रकाश है।

17. **मधुमक्खी** मेरी सत्रहवीं गुरु है।

वह फूलों को नुकसान पहुँचाए बिना शहद एकत्र करती है।

मैंने उससे सीखा कि साधक को अनेक शास्त्रों से सार ग्रहण करना चाहिए।

18. **मृग** मेरा अठारहवाँ गुरु है।

मृग मधुर ध्वनि के आकर्षण में फँस जाता है। मैंने इससे इन्द्रियों की दासता का परिणाम समझा।

19. **बाज** मेरा उन्नीसवाँ गुरु है।

एक मांस के टुकड़े के लिए कई बाज आपस में संघर्ष करते हैं।

मैंने इससे संसार के सुखों के लिए होने वाला संघर्ष समझा।

20. **कन्या** मेरी बीसवीं गुरु है।

उसने शोर से बचने के लिए अपनी चूड़ियाँ उतार दीं।

मैंने इससे सीखा कि साधक को एकांत प्रिय होना चाहिए।

21. **सर्प** मेरा इक्कीसवाँ गुरु है।

सर्प अपना घर नहीं बनाता।

मैंने उससे सीखा कि साधक को अनिकेत भाव से रहना चाहिए।

22. **मकड़ी** मेरी बाइसवीं गुरु है।

मकड़ी अपना जाल बनाती है, उसमें रहती है और अंत में उसे समेट लेती है।

मैंने इससे जाना कि यह सृष्टि आत्मा से उत्पन्न होकर उसी में विलीन हो जाती है।

23. **इल्ली** मेरी तेइसवीं गुरु है।

इल्ली निरंतर भृंग को देखती रहती है और अंततः उसी के समान हो जाती है।

मैंने इससे गुरु-शिष्य चेतना के संबंध को समझा।

24. **जल** मेरा चौबीसवाँ गुरु है।

जल सबकी प्यास बुझाता है और सबसे नीचे बहता है।

मैंने उससे विनम्रता और सेवा का गुण सीखा।

इस प्रकार मैंने जाना कि विवेकशील व्यक्ति संसार की सामान्य वस्तुओं और घटनाओं से भी शिक्षा ग्रहण कर सकता है।

सच्चा साधक वही है

जो संसार के प्रत्येक अनुभव में

गुरु का दर्शन कर ले।

आध्यात्मिक व्यंग्य

में वायरस

आदित्य

कोरोना के कारण हम सभी हानिकारक वायरस और उसके प्रभाव से परिचित हैं। वायरस इतने सूक्ष्म होते हैं कि हमारी आंखें उन्हें देख नहीं पातीं फिर भी सूक्ष्मदर्शी से इनकी भौतिक उपस्थिति देखी जा सकती है। इन्हीं की बिरादरी का एक हानिकारक वायरस ऐसा भी है जिसकी भौतिक उपस्थिति नहीं पायी जाती, जबकि यह सूक्ष्म भी होता है और विशाल भी! और इसका प्रभाव भी व्यापक होता है। यह सूक्ष्मदर्शी से नहीं दिखता पर सूक्ष्मदर्शियों द्वारा देख लिया जाता है और उन्होंने ही इस हानिकारक वायरस का नाम "में" रखा है।



‘में’ वायरस का परिचय

यह श्री ईडियट वाले वायरस का मौसेरा भाई है, इसे भी मानव निर्मित संस्थाओं ने ही संक्रामक बनाया है वरना प्राकृतिक रूप में यह संक्रामक नहीं था। यह भी उस वायरस की तरह हीन नहीं है, भले ही यह ‘डीन’ नहीं है लेकिन यह हीनता और ‘डीनता’ दोनों को संक्रमित करता है। इसमें भी सभी को नियंत्रित करने की प्रवृत्ति पायी जाती है। कोई विरला वांगडू ही इसके संक्रमण से बच पाता है।

‘में’ वायरस की प्रकृति

इसकी प्रकृति अन्य वायरसों से भिन्न है। अन्य वायरस दूसरे से संपर्क में आने पर फैलते हैं लेकिन यह दूसरे के अलावा स्वयं के संपर्क में आने पर भी फैलता है। यह जो नहीं होता स्वयं को वह समझने लगता है और इसकी इम्युनिटी इंद्रियों के साथ गति करने से बढ़ती जाती है।

यह बेहद नालायक किस्म का वायरस होता है, करता कुछ नहीं है पर बड़ी सफाई से कहता है, देखो मैंने ही किया। हर कार्य का उत्तरदायित्व लेता है खांसने छींकने तक का भी।

संक्रमण के लक्षण

‘में’ वायरस की इम्युनिटी स्ट्रॉंग होते ही मनुष्य की इम्युनिटी वीक हो जाती है और फिर व्यक्ति गलतफहमी का शिकार हो जाता है। भिन्न आयु वर्ग में इसके भिन्न-भिन्न लक्षण पाए जाते हैं। बच्चों में यह स्पर्शेंद्रिय अर्थात् त्वचा से प्रवेश करता है इसलिए बच्चे के शारीरिक हाव भाव से संक्रमण का पता चलने लगता है।

- संक्रमित बच्चा बकरी की तरह "में में" करना आरंभ कर देता है।
- वह तोते के जैसे रटने लगता है, "मुझे बड़ा आदमी बनकर मम्मी पापा का नाम रोशन करना है"।
- किशोरों में इसका संक्रमण जमाने की हवाओं के साथ श्रवणेंद्रिय अर्थात् कानों तक पहुंच जाता है।
- इसके प्रभाव से संक्रमित किशोर कुछ साबित करने के लिए दौड़ लगाने लगता है, इस दौड़ में या तो वह CGPA के पीछे भागता है या फिर स्कूल के पीछे से।



- वह अपने जैसों के झुंड पसंद करने लगता है, उन्हें मित्र बुलाता है और उनसे प्रतिस्पर्धा भी रखने लगता है।
- वोट देने की आयु वालों में इसका प्रभाव दृश्येंद्रिय अर्थात आंखों तक पहुंच जाता है।
- व्यक्ति की आंखें चौड़ी हो जाती हैं, वो लोगों को देखते ही रह जाता है और जिससे ज्यादा सम्मोहित होता है उसके जैसा बनने के लिए उतारू हो जाता है।
- कुछ की खुली आंखों में सपने तैरने लगते हैं उन सपनों में उसे कुर्सी, कारें, बंगले और अलग-अलग कोणों से बहुत सारी पादुकोणें दिखने लगती हैं। चालीस पार की आयु वर्ग में इसका वेरिएंट चेंज हो जाता है और यह घ्राणेंद्रिय अर्थात नथुनों तक पहुंच जाता है।
- पीड़ित अपनी कुर्सी, बंगले, पादूकोण के अलावा अपनी रचनाओं की तुलना भी दूसरों से करता हुआ सुखी या दुखी पाया जाता है। सुखी! सुख में दुःख और दुखी! दुःख में सुख खोज लेता है।
- कभी कभी उसके नथुने ज्यादा फूल जाते हैं, जिससे वह कराहता और बड़बड़ाता हुआ पाया जाता है, "मैंने ये किया मैंने वो किया लेकिन मुझे क्या मिला"।
- रिटायरमेंट वाले आयु वर्ग में इसका संक्रमण जीभ तक पहुंच जाता है, पीड़ित व्यक्ति स्वादहीनता महसूस करने लगता है, इसलिए वह अपना अधिकांश समय 'मैं' वायरस की जुगाली में बिताता है।
- अचानक उसमें बहुत सारा ज्ञान आ जाता है और दयालुता भी! क्योंकि वह स्वयं उस ज्ञान के उपयोग से वंचित रहा था इसलिए बांटने में सुख पाता देखा जाता है।

- वह अति सामाजिक हो जाता है और ऐसा कहते हुए भी पाया जाता है "तुम किसी के मरने में नहीं जाओगे तो तुम्हारे मरने मे कौन आएगा"।

‘मैं’वायरस से बचाव व इलाज

संक्रमण का पता चलते ही बिना समय गंवाए इसकी खोज आरंभ कर देनी चाहिए और यदि यह न मिले तो क्वारंटाइन हो जाना ही एकमात्र बचाव व इलाज होता है।

संक्रमण समाप्ति के लक्षण

- आइने में चेहरा देखते ही हंसी का आने लगना, कि अच्छा यही डिब्बा दौड़ाए पड़ा था।
 - आकाश के जैसे खाली होने के अहसास से भरे होना।
- कुछ औषधालयों ने इस वायरस के एन्टी डोज भी विकसित किए हैं, आप चाहें तो उनसे भी संपर्क कर सकते हैं। इनकी सेवाएं निःशुल्क हैं, ये हैं :
- बोधिवार्ता, आत्मबोध, शून्यबोध, नित्य बोधि आदि।



बोध संवाद

आत्मबोध से जुड़े सामान्य प्रश्न

मानवेंद्र मुक्त



प्रश्न 1: क्या आत्मबोध कोई विशेष अनुभव या अलौकिक अवस्था है?

उत्तर: नहीं। आत्मबोध कोई असाधारण अनुभव नहीं है। वह सबसे साधारण और स्वाभाविक स्थिति है—होनापन। असाधारण अनुभव आते-जाते हैं, आत्मबोध टिकता है।

प्रश्न 2: क्या आत्मबोध प्राप्त होते ही हमेशा आनंद ही रहता है?

उत्तर: नहीं। दुख, दर्द, चुनौती जीवन का हिस्सा रहते हैं। पर आत्मबोध में दुख से पहचान नहीं बनती।

प्रश्न 3: क्या आत्मबोध का अर्थ मन का समाप्त हो जाना है?

उत्तर: नहीं। मन कार्य करता है, लेकिन स्वामी नहीं बनता। वह उपकरण बन जाता है।

प्रश्न 4: क्या आत्मबोध के बाद विचार आना बंद हो जाते हैं?

उत्तर: नहीं। विचार आते हैं, लेकिन चिपकते नहीं। वे आकाश में बादलों जैसे होते हैं।

प्रश्न 5: क्या आत्मबोध पाने के लिए संसार छोड़ना पड़ता है?

उत्तर: नहीं। आत्मबोध संसार छोड़ने से नहीं, संसार से उलझन छोड़ने से होता है।

प्रश्न 6: क्या आत्मबोध कोई उपलब्धि या लक्ष्य है?

उत्तर: नहीं। उपलब्धि भविष्य में होती है। आत्मबोध वर्तमान की स्पष्टता है।

प्रश्न 7: क्या आत्मबोध पाने के लिए बहुत सारी जानकारी चाहिए?

उत्तर: नहीं। जानकारी बढ़ाने से भ्रम बढ़ सकता है। आत्मबोध जानकारी घटने से स्पष्ट होता है।

प्रश्न 8: क्या आत्मबोध का अर्थ निष्क्रिय या उदासीन होना है?

उत्तर: नहीं। आत्मबोध में क्रिया अधिक सजीव होती है, लेकिन मानसिक बोझ के बिना।

प्रश्न 9: क्या आत्मबोध का अर्थ भावनाओं का नष्ट हो जाना है?

उत्तर: नहीं। भावनाएँ आती हैं, लेकिन उनसे बंधन नहीं बनता। संवेदना बनी रहती है।

प्रश्न 10: क्या आत्मबोध में व्यक्ति अलग-थलग हो जाता है?

उत्तर: नहीं। वह समाज में रहता है, लेकिन मानसिक दूरी समाप्त हो जाती है (अर्थात् मानसिक भेद समाप्त हो जाते हैं)।

प्रश्न 11: क्या आत्मबोध का मतलब “मैं कुछ खास हूँ” हो जाना है?

उत्तर: नहीं। यही सबसे बड़ा भ्रम है। आत्मबोध में “विशेष होने” की भावना समाप्त होती है।

प्रश्न 12: क्या आत्मबोध से सारे कर्म समाप्त हो जाते हैं?

उत्तर: नहीं। कर्म होते हैं, लेकिन कर्ता नहीं बनता। कर्म बंधन नहीं बनते।

प्रश्न 13: क्या आत्मबोध कोई स्थायी ध्यानावस्था है?

उत्तर: नहीं। यह ध्यान नहीं, ध्यान की आवश्यकता का अंत है।

प्रश्न 14: क्या आत्मबोध मिलने के बाद जीवन आसान हो जाता है?

उत्तर: जीवन सरल हो जाता है, लेकिन परिस्थितियाँ जरूरी नहीं कि आसान हों। स्पष्टता आती है, आराम नहीं।

प्रश्न 15: आत्मबोध को लेकर सबसे सूक्ष्म भ्रम कौन-सा है?

उत्तर: यह मान लेना कि “मैं आत्मबोधी हूँ।” यह विचार आते ही बोध से गिरावट शुरू हो जाती है।



लघु बोध कथाएँ

खामोश दीवार का राज़

स्वयंदीप्ता

एक छोटे से गाँव में एक पुरानी हवेली थी, जिसकी सबसे ऊँची दीवार पर कोई खिड़की नहीं थी। गाँव वाले कहते थे – "उस दीवार के पीछे कुछ नहीं है, बस अंधेरा।" लेकिन एक लड़का, नाम था आरव, हर शाम वहाँ जाकर दीवार से कान लगाता और सुनता।

एक दिन उसने दीवार से आवाज़ सुनी – हल्की-सी, जैसे कोई फुसफुसा रहा हो "मैं यहाँ हूँ... पर दिखता नहीं।" आरव डर गया, लेकिन रुक नहीं सका। रोज़ आता, सुनता। धीरे-धीरे आवाज़ साफ़ हुई "मैं वो सपना हूँ जो तुमने कभी किसी को नहीं बताया। मैं वो डर हूँ जो तुम छिपाते हो। मैं वो ताकत हूँ जो तुम इस्तेमाल नहीं करते।" आरव ने पूछा, "तुम कौन हो?" दीवार बोली, "मैं तुम्हारा ही वो हिस्सा हूँ जो तुमने कभी सामने नहीं आने दिया। खिड़की न होने से मैं बाहर नहीं आ सका, पर अब तुम सुन रहे हो तो मैं जीवित हो रहा हूँ।"

आरव ने सोचा और अगले दिन एक छोटी-सी खिड़की बनवाई दीवार पर – बस इतनी कि रोशनी आ सके। पहले दिन रोशनी आई, दूसरे दिन हवा, तीसरे दिन उसकी अपनी आवाज़ गूँजी: "मैं तैयार हूँ।" उसके बाद गाँव वालों ने देखा – आरव अब पहले जैसा नहीं रहा। वह जो पहले चुप रहता था, अब बोलता था। जो डरता था, अब कदम बढ़ाता था।



बोध बिंदु

1. सच्ची आज़ादी तब मिलती है जब तुम्हें ये एहसास हो जाए कि जो चीज़ तुम्हें बाँध रही है, वो बाहर नहीं – तुम्हारे "मैं हूँ" के अंदर है।
2. समय माफ़ नहीं करता, वो बस इंतज़ार करता है – जब तक तुम खुद को माफ़ नहीं कर लेते, वो तुम्हारे लिए रुकता नहीं।
3. जो इंसान दूसरों की कमज़ोरी देखकर हँसता है, वो अपनी ताकत कभी नहीं जान पाता। असली बहादुर वही है जो दूसरों की कमज़ोरी देखकर मदद का हाथ बढ़ाता है।
4. सपने देखना आसान है, उन्हें जीना मुश्किल। पर सबसे मुश्किल है – सपने देखते हुए जागना, और फिर भी चलते रहना।
5. दुनिया तुम्हें तब तक छोटा समझती रहेगी, जब तक तुम खुद को नापने के लिए दूसरों की नज़र इस्तेमाल करते रहोगे। अपना पैमाना खुद बनाओ।



एक बोध कथा मानसिक भार से मुक्ति

एक बार दो बौद्ध भिक्षु जंगल के मार्ग से अपनी यात्रा पर थे। रास्ते में एक उफनती हुई नदी पड़ी, जिसके किनारे एक युवती अत्यंत दुविधा में खड़ी थी। वह नदी पार करना चाहती थी, पर लहरों के वेग से भयभीत और असमर्थ थी।

दोनों भिक्षुओं को भी उसी पार जाना था। उनमें से एक भिक्षु आगे बढ़ा, उसने बिना कुछ सोचे उस स्त्री को अपने कंधों पर उठाया, नदी पार की और सुरक्षित दूसरे किनारे पर उतार दिया। इसके बाद दोनों भिक्षु अपनी आगे की यात्रा पर निकल पड़े।

काफी समय बीत गया, पर दूसरा भिक्षु भीतर ही भीतर अशांत था। वह सोच रहा था कि गुरुदेव ने तो स्त्रियों से दूरी बनाए रखने का कठोर नियम दिया था, फिर मेरे साथी ने गुरु-आज्ञा का उल्लंघन कर एक स्त्री को स्पर्श क्यों किया?

अंततः जब उससे रहा नहीं गया, तो उसने पूछ ही लिया— "गुरु भाई, क्या आपको याद नहीं कि हमें स्त्री स्पर्श वर्जित है? फिर आपने उस युवती को अपने कंधों पर क्यों उठाया?"

पहले भिक्षु ने शांत भाव से उसकी ओर देखा और मुस्कराते हुए कहा— "मित्र! मैंने तो उस स्त्री को वहीं नदी के किनारे उतार दिया था, तुम उसे अभी तक उठाए हुए हो?"

ठहर जा

(राम)

“ठहर जा”—अंगुलिमाल ने बुद्ध से कहा।
उसके उत्तर में बुद्ध ने अंगुलिमाल से कहा,
“मैं तो ठहर गया हूँ, तुम कब ठहरोगे?”

बुद्ध के ये शब्द कहने को तो अंगुलिमाल के लिए थे, परंतु मेरी समझ में ये केवल अंगुलिमाल के लिए नहीं थे, बल्कि सभी व्यक्तियों के लिए—या मुख्यतः साधकों के लिए—कहे गए थे।

यही ठहरना तो सूत्र है। जिसने इसे पकड़ लिया, वह इसी के सहारे ब्रह्म हो जाएगा। ब्रह्म होना भी केवल एक संकेत मात्र है, क्योंकि जो तुम पहले से हो, वही प्रकट होगा—तुम कोई नई चीज़ नहीं बनोगे। बस अपने ऊपर जो बोझ उठा रखा है, उसका त्याग हो जाएगा।

मैं आपको फिर से “ठहर जा” पर ले जाना चाहता हूँ। सबसे पहले तो ठहरना ही है। यह ठहरना सड़क किनारे खड़े उस व्यक्ति के ठहरने जैसा है, जो सड़क पर आते-जाते वाहनों को देखता रहता है।

वह केवल देखता है—अनेक वाहन वहाँ से गुजर जाते हैं और वह बस वहीं खड़ा उन्हें देखता रहता है। कोई धीरे-धीरे जा रहा है, कोई बहुत तेज़ निकल जाता है, परंतु तुम केवल उस दृश्य को देखते रहते हो—बिना प्रभावित हुए, बिना स्वयं को किसी से जोड़े।

बस ऐसे ही तुम्हें ठहरना है और अपने मन में आने वाले सभी विचारों को सड़क से गुजरते वाहनों की तरह केवल देखना है। वे विचार तुम्हारे नहीं हैं। विचारों का काम ही आते रहना है।

असंख्य विचारों में से कोई एक जो वास्तव में आवश्यक होगा, उस पर कार्य होता हुआ तुम देखोगे—पर यह तभी संभव है जब तुम ठहरे हो। स्वयं को उनमें सम्मिलित किए बिना केवल दृष्टा बने रहो। शीघ्र ही तुम्हें ज्ञात होने लगेगा कि जो कुछ भी हो रहा है, तुम उसके कर्ता नहीं हो—वह बस घटित हो रहा है।

मौन संवाद

विचार करें:-

१-पहले “मैं अनुभव कर रहा हूँ” था।
२-फिर केवल “अनुभव” रह गया।
३-फिर “होना” भी विलीन होने लगा।
अब देखिए — क्या “होना” भी एक सूक्ष्म धारणा नहीं है?
क्या “अस्तित्व” शब्द भी किसी बोध पर आधारित नहीं है?
यदि “होना” भी जाना जा रहा है — तो आप “होना” भी नहीं हैं।
यहाँ एक अत्यन्त सूक्ष्म मोड़ आता है।
न शून्य। न पूर्ण। न मौन। न अमौन।
कुछ भी कहने से पहले — वह है। पर “है” भी नहीं।

यही वह बिंदु है जहाँ मन थक जाता है, बुद्धि समर्पित हो जाती है, और केवल सहजता बचती है। अब आप स्वयं देखें — जब आप पूर्णतः स्थिर होते हैं, क्या वहाँ कोई अवस्था है? या केवल यह भी नहीं कहा जा सकता? धीरे-धीरे देखें... बिना शब्द के।

ध्यान दें:

यदि मेरा न जन्म होता, न मृत्यु—
तो क्या मेरे लिए भूत या भविष्य का कोई अर्थ रह जाता?
और जब भूत-भविष्य ही नहीं—
तो वर्तमान किसका?
यहीं बुद्धि ठहर जाती है।

झूठ ही सही -

एक बार मान कर देखिए:
- आप कोई ज्ञानी नहीं
- आप साक्षी भी नहीं
फिर भीतर पूछें:
यदि मुझे कुछ सिद्ध नहीं करना है...
तो मैं अभी क्या हूँ?
उत्तर मत बनाइए।
बस रहने दीजिए।

विचार करें:-

जब “मैं अच्छा अनुभव कर रहा हूँ” रहता है,
तब सूक्ष्म रूप से “मैं” अभी भी केंद्र में है।
फिर वह गिरता है —
केवल अनुभव शेष रहता है।
लेकिन अभी भी एक लहर है —
“कुछ घट रहा है।”
अब और सूक्ष्म देखिए:
जब “अनुभव” शब्द भी गिर जाता है,
तब क्या बचता है?
कोई अनुभव करने वाला नहीं।
कोई अनुभव नहीं।
फिर भी —
अभाव भी नहीं।
यह जो शेष है —
उसे पकड़ नहीं सकते।
उसे जान नहीं सकते।
उसे देख नहीं सकते।
क्योंकि वही तो देखना है।
वही तो जानना है।

ध्यान दें:

लहर या घड़ा दिखना परेशानी नहीं है,
लहर या घड़ा दिखते हुए पानी या मिट्टी नहीं दिखना
यह परेशानी है। जगत दिखते हुए ब्रह्म दिखना मुक्ति है।

अष्टावक्र गीता:

न शून्यं नापि चाशून्यं

न द्वैतं नापि चाद्वैतम्।

न शून्य है,

न अशून्य।

न द्वैत,

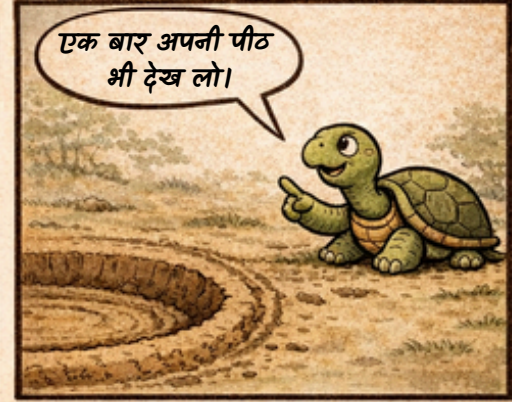
न अद्वैत।

क्यों?

क्योंकि जैसे ही हम कहते हैं “अद्वैत” —

तुरंत “द्वैत” का संदर्भ आ जाता है।

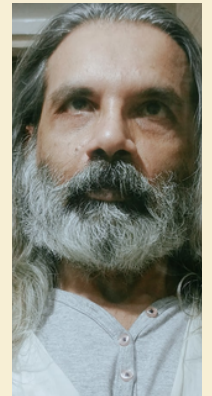
खोजी और सत्य



खोज रुके,
तब पता चले—खोजी ही सत्य है।

सत्संग के कुछ क्षण

देश के विभिन्न स्थानों से —
संवाद, साक्षात्कार और मौन की झलकियाँ





अप्प दीपो भवः

मुक्तिबोधः निःशुल्क डिजीटल आध्यात्मिक पत्रिका

(मूलतः ज्ञानमार्ग पर आधारित)

परिचय एवं अस्वीकरण

यह पत्रिका सत्य के जिज्ञासुओं, विशेषकर ज्ञानमार्गी साधकों, सभी मार्गों के गुरुजनों और मनीषियों की अनुभूतियों की एक सामूहिक अभिव्यक्ति है। इसके संपादन मंडल के सभी सदस्य अवैतनिक हैं और निःस्वार्थ भाव से सेवारत हैं। इस पत्रिका के कलात्मक निर्माण, लेआउट और दृश्य सामग्री में आधुनिक AI तकनीक का सहयोग लिया गया है। यहाँ प्रकाशित समस्त सामग्री पूर्णतः मौलिक है और इसका कॉपीराइट संबंधित रचनाकारों के पास सुरक्षित है। लेखों और कविताओं में व्यक्त विचार लेखकों के निजी अनुभव हैं।

ज्ञानमार्गः इस पथ पर कोई कठिन साधना या अभ्यास नहीं, बल्कि गुरु के संकेत से श्रवण, मनन और ज्ञान में स्थित रहना ही महत्वपूर्ण है। यह संसाधनों का एक निःशुल्क और विज्ञापन-रहित संग्रह है, जिसका लक्ष्य साधकों को आनंद, मुक्ति और अज्ञान से निवृत्ति की ओर ले जाना है।

हिंदी समूह :

-  ज्ञानदीक्षा सत्संग
-  तंत्र बोधि
-  बोधि वार्ता सत्संग
-  आत्मबोध सत्संग
-  अनंत बोधि
-  ज्ञानदृष्टि सत्संग
-  शून्य बोधिसत्व सत्संग
-  ज्ञानवर्धक सहायता
-  शिखर बोधि सत्संग

नेपाली समूह :

-  ज्ञानवाणी

English Groups:

-  Essence of Knowledge
-  Tantra Bodhi
-  Spiritual Singularity
-  Pure Experiences
-  Silent Wisdom
-  Blissful Awareness
-  Yuj Foundation

मराठी समूह :

-  ज्ञानदीक्षा मराठी सत्संग

गुजराती समूहो :

-  ज्ञानदीक्षा गुजराती

gyanmarg.guru



निःशुल्क ऑनलाइन गुरुकुल से जुड़ने हेतु स्कैन करें

गुरु तत्त्व | गुरुक्षेत्र | गुरु मंडल

© २०२६ gyanmarg.guru | संकलित एवं डिजिटल प्रकाशित

(समस्त रचनाओं का सर्वाधिकार संबंधित गुरुजनों, आश्रमों, संस्थानों एवं साधकों-रचनाकारों के पास सुरक्षित है)